भाग १८ | जूलाई और अगस्त १९१३ | संख्या १—२

मुद्रानन्द-चरितावली।

(ले० साहित्याचार्य पं० रामावतार पाण्डेय एम० ए०)

१७ वाँ अध्याय।

मैं इसी प्रकार आकाश में अपनी त्रिकाल-यात्रा के लिये घूम रहा था और अनेक तमाशे देख रहा था। पुरानी सभ्यता का नाश कर जो नई जातियाँ निकलीं उनमें एक एक करके सब का तमाशा मैं कायव्यूह से देखता चला। इन जातियों की उन्नति का वर्णन यदि किया जाय तो दस पाँच महाभारत बन जाँय। भाष्यकार भाई शेषजी यदि फिर किसी के तप से पाताल से ऊपर आ जाते तभी इन जातियों के इतिहास का वर्णन कर सकते। नरमण्डी से आकर विलियम ने जो आंग्ल भूमि का विजय किया, इधर महामद के अनुयायियों ने जो सिन्ध के किनारे से सुफेन देश तक अपना राज्य जमाया, उधर महाकरल के राज्य के टुकड़े हो जाने पर शर्मण्य, फरासीसी आदि जो स्वतन्त्र हुए, ईशा की क़बर के लिए जो ईसाई व मुसलमान स्वस्तिक युद्धों के लिए करोड़ों कट गए या वीर लोग जो घोड़ों पर चढ़कर चक्रासुर आदि बड़े बड़े असुरों को मारते गये, शर्मण्यों में सभ्यता के केन्द्रस्वरूप जो महानगर उत्पन्न हुए, क्रमवल ने जो राजा करल की हत्या की, चौदहवें प्रवेश के समय में फरांसीसियों के जो रुपये फूँके गये कुलुम्ब आदि ने जो अमेरिका का पता पाया था, वहाँ जाकर बसे हुए अँगरेज़ आदि ने जो पूर्वी बन्धन तोड़ कर नया प्रजाराज्य स्थापित किया, इधर बस्क महाशय ने भारत का रास्ता खोल कर जो इस पवित्र देश में यूरोप का रोज़गार और शासन जमने का अवसर दिया, जगदेकवीर नयपाल्य ने जो बीस वर्ष तक समूचे यूरोप को कँपाते हुए अपूर्व प्रचण्डता दिखाई, इन बातों का वर्णन मुझ से कैसे हो सकता है। हाल में इधर देखता हूँ तो और भी अपूर्व घटनाएँ

देख पड़ती हैं। जापानवालों ने प्राचीन रूस को धक्का देकर भगा दिया है, चीनवालों ने टीक कट-वाकर प्रजा-राज्य स्थापित कर लिया है, मुसलमानों का बुरा हाल है, मिसर खतम हो चुका, पारस के उत्तरीय व दक्खिनी टुकड़े दोनों दो ओर लुढ़क रहे हैं। कंसतन्तु पुरी में सुप्रिया के पुराने गिर्जा पर जो कई सौ वर्ष हुए तुर्कों ने अधिकार जमाया था सो डगमगा रहा है। भूत, भविष्य, वर्त्तमान ऐसी गड़बड़ों को देखकर मैंने अपनी त्रिकाल-यात्री आत्मा को तो हेमकूट वाली आत्मा में मिला दिया। हेमकूट वाली आत्मा चिरकाल तक समाधि में पड़ी रही, अपनी बाल्यावस्था के इष्ट बन्ध्यापुत्र जी के विरह में मैं तप रहा था, भविष्य महात्मा बिलाकटानन्द सरस्वती आदि सज्जनों के ध्यान से अपने को कृतार्थ करता जा रहा था। कई हज़ार वर्ष तक खपुष्प के काँटों पर सोये सोये असम्प्रज्ञात समाधिनिद्रा में रहते हुए, बिना खाये पीये, बिना शौच आदि गये मुझे जीवन बिताना पड़ा। अन्ततः त्रेतायुग में जो हत्यारे रावण के कारण राम के सीता-वियोग के सदृश मुझे मूँछों का वियोग हुआ था उस वियोग के ताप से मेरे माथे से धूँआ निकलने लगा। इसे देखकर हेमकूट विश्वविद्यालय के चान्सेलर कुलपति कश्यपजी के पास जाकर उनकी धर्मपत्नी दाक्षायणी ने विश्वविद्यालय के लड़कों की ओर से अर्ज़ी पेश की कि वरुणलोकवासी त्रैलोक्य दिवाकर प्रचण्ड प्रकृतिक हिज़ होलीनेस श्री स्वामी मुद्गरानन्द जी आश्रम से न हटा दिये जायँगे तो सारी जंगली झाड़ी जल जायगी और राजनीति में दख़ल देनेवाले व्याख्याताओं के व्याख्यान से जितना हरज होता है उससे बढ़कर विश्वविद्यालय में हरज हो जायगा। इस अर्ज़ी पर बहुत कुछ विचार करने के बाद श्रीमान कुलपतिजी ने अपने भयानक समाधि-बल से मुझे ज्यों का त्यों उठाकर हेमकूट से त्रिवेणी तट पर फेंक दिया। यहाँ भी मेरी समाधि लगी रही। दैवात् एक दिन आज से प्रायः बारह तेरह वर्ष पहिले, कुम्भ के मेले के समय बन्ध्यापुत्र के वाहन प्रसिद्ध पाँखवाले श्यामश्रुति दरियाई घोड़े की हिनहिनाहट सी आकाश में सुन पड़ी जिससे मेरी समाधि निद्रा खुली, तो मैं देखता क्या हूँ कि आकाश में घोड़ा आदि कुछ भी नहीं है केवल मुरादाबाद, बरेली, हरिद्वार आदि से आये हुए सनातनी आर्य्य-समाजी आदि धार्मिक व्याख्याता लोग व्याख्यान दे रहे हैं। समाधि के बाद ऐसे व्याख्यानों में क्या जी लगे। मुझे तो मेले में नागा लोगों के ब्रह्ममय शरीरों के अतिरिक्त और कुछ देखने के लायक़ वस्तु नहीं मालूम पड़ती थी। इनके दर्शन से मायावाद का प्रत्यक्ष दर्शन होने लगा। इन लोगों ने वस्त्र तक को माया समझ लिया था। मुझे भी इनके दर्शन से अपना शरीर और जगत् कुछ नहीं सूझता था। कभी केवल निराकार सन्तान सूझने लगता था और कभी हज़ारों अंगुष्ठ मात्र बालखिल्य पुरुष इधर उधर दीख पड़ते थे। थोड़ी देर में मैं ऐसा हो गया कि मैं तो सब को सूझता था पर मुझे "तुसी ब्रह्म असी ब्रह्म" ब्रह्म ही ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझने लगा। प्रिय पाठक! समाधि टूटने के बाद की यह अवस्था है फिर समाधि का आनन्द कैसा हुआ होगा सो क्या कहा जा सकता है। ऋषियों ने कहा है:—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो,
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न तद्गिरा वर्णयितुं हि शक्यते,
स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥

—:०:—

१८ वाँ अध्याय।

मेरी समाधि-निद्रा के भङ्ग का राघव कृत पिनाक-भङ्ग-वृत्तान्त सा अद्भुत वृत्तान्त ब्रह्माण्ड में फैल गया। क्यों न फैले, मेरा आसन टूटते ही पृथ्वी काँप उठी, शेष के सिर दब गये।

भरि भुवन घोर कठोर रव रवि बाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनिकर कान दीन्हें सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड भंजेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

इत्यादि तुलसीदासजी की कविता का असल अनुभव लोगों को हो चला। मेरे ब्रह्ममय उपदेशों के सुनने के लिये बहुत से लोग हिन्दू, मुसलमान कृस्तान, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, बाल, वृद्ध, युवा सभी आ जुटे। कितनेही सखाभाव में थे, कितनेही सखीभाव में थे, कितने मद्य के प्रभाव में थे, कितनेही होश हवास में थे। मेरा अद्भुत श्याम वर्ण, बिना जूते के चरणारविन्द, मोटिया की दुलाई, और चमकता हुआ खासा ताजा सौंक का अंगरेज़ी टोप इत्यादि आभरणों से युक्त मनमोहिनी मूर्त्ति देखकर सभी मुग्ध हो जाते थे। थाल के थाल दिव्य हलुआ, पूरी, पावरोटी, लड्डुआ, कचैाड़ी, ॐकार के साथ इश्तहार देनेवाले मेहतर व ब्राह्मण को एक समझनेवाले लोगों की बनाई हुई पवित्र शराब, पवित्र साबुन, घास पार्टीवाले के साग पात और मांस पार्टीवाले के कबाब कोफ्ता आदि देशी विदेशी विलायती रङ्ग बिरङ्गे कपड़े भूषण आदि सभी चीजें मेरे सामने रखी गईं। सब लोग अपनी अपनी भेंट के स्वीकार के लिये जैराज, श्रीजी, भगवान् आदि शब्दों से मेरी दुहाई देने लगे, और सभी मेरे पवित्र शरीर के एक बार छूने के लिये हल्ला करने लगे। एक बनारसी रईस चिल्लाते थे कि 'भयवा हम महाराज का चरणारविन्द अभी छुयबे औ भोग लगयबे। नाहीं त हमरी नोकरी चाकरी जैहे त जैहे। हमें बेगैर यह चरण के चैन नाहीं है'। इतना कहकर रईस फूट फूट कर रोने लगे और जैसे रथयात्रा के दिन गैारीशंकर के कूँए के पास रथ के सामने बूढ़े पण्डितजी लोटते थे वैसीही ज़मीन पर लोटने लगे। एक सारन का अहीर नंगे बदन खड़ा था सो बड़े ज़ोर से चिल्ला उठा 'हटीं सभनी जी तनी हमरो के महराजजी के खुरनारविन्दवा टोये दीं'। इतना कहकर अपनी लाठी घुसेड़ता वह आगे बढ़ा। सब लोग हँसने लगे। रईस जी फूट फूट कर रोते थे वह भी हँसने लगे। इतने में एक मिर्ज़ापूरी गुण्डा आबेरवाँ का दुपट्टा ओढ़े हुए सुनहरी मुट्ठी का चिकना मोटा डंडा चमचमाते हुए बोल उठा–'अरे ई का गुल गड़प्पा करत हैाअ हो, हमरो के गुरु का दर्शन होए दः' एक दुबला बङ्गाली विद्यार्थी चिल्ला रहा था, "कैनो, अत गण्डगोल कैनो। आमा के परमहंसेर दर्शन हबेना'। टोप लगाये एक काला यूरेशियन चिल्लाता फिरता था 'हाय मी गुड सी हिज होलिनेस पट पनी कास्ट। ही इज वन आफ अस।' इस पर शाहेब शाहेब करते बहुत से स्त्री पुरुष हट गये। एक मारवाड़िन सेठानी रङ्गीन लहंगा पहिने गोद में बच्चा हाथ में मोहनभोग का थाल लिये चिल्ला रही थी। उधर एक मरहट्टे जंटिलमेन अपनी स्त्री को साथ लिये खड़े थे और कुछ कह रहे थे। एक बीभत्स मोटी मेम एक काले लड़के के साथ खड़ी थी, और लड़के से कुछ अवतार की बातें कर रही थी। इतना हल्ला गुल्ला हो रहा था कि मुझसे वरुणलोक के आदमी का इतने हल्ले में इस अपरिचितप्राय पृथ्वी की भाषाओं काल क्या करना मुश्किल था। इस प्रकार हल्ला हो रहा था तब तक मेरे संक्षिप्त उदर में एक अपूर्व विकार

उत्पन्न हुआ और मैंने समीप बैठी हुई एक आज़मगढ़ की भक्तिन के थाल में से कई ठोकुये निकाल कर खा लिये। खाते खाते ब्रह्माद्वैत 'अन्न ब्रह्मेति व्याजानात्' की धारा में श्री दुःखभञ्जन आदि आधुनिक और भैरवाचार्य आदि प्राचीन कवियों का गुणकीर्त्तन करते हुए अकालजलद के नाती वाल्मीकि, मेण्ठ व भवभूति के अवतार महामहर्षि राजशेखर के देखे हुए—

'रण्डा चण्डा दिक्खिदा धम्म-दारा,
मज्जं मंसं पिज्जये खज्जये च।
भेक्खा भोज्यं चम्प खण्डं च सेज्जा,
कोह्लो धम्मो कस्सणो होई रम्मो ॥'

इस महाब्राह्मणीय सूत्र को पढ़ते हुए जल के बदले एक पूरी बोतल किसी दूसरी ओर बैठे हुए एक विलायत यात्रा के परम विरोधी कल्यपाल जाति के भगतजन के हाथ से छीन कर मैंने गड़गड़ अपनी पवित्र गलरन्ध्र में खाली कर दी। इस प्रकार अकस्मात् भगत-भगतिनों पर कृपा करने के कारण लोग अत्यन्त हर्षित हुए और जय जय ध्वनि से आकाश गूंज उठा। इतने में सन्ध्या हुई। मेरी आंखों पर इधर वारुणी राग चढ़ा उधर भगवान् सूर्य्य भी वारुणी राग से लाल हुए। घनान्धकार आकाश में व मोहान्धकार जनचित्तों में छा गया। नदी तट पर चकवा चकई का विरह आ पड़ा। इधर लोगों के ख्याल में भक्ति और ज्ञान का विरह आ उमड़ा। रात्रि की वृद्धि के साथही साथ वन्ध्या-पुत्र चरितावली की वृद्धि जगत् में होने लगी।

—:०:—

१६ वाँ अध्याय।

हमको अधिक भोजन के कारण कुछ असुविधा सी मालूम पड़ने लगी। एक भगत की ओढ़ाई हुई दुलाई नीचे रखकर हम खड़े हो गये। ब्रह्मनिशा के साथ वारुणी-निशा की मिलावट होने के कारण मुझे यह नहीं ख्याल था कि चिरकालिक समाधि में अपनी होश ठिकाने न थी। अब तो दुलाई व अन्धकार दो ही लज्जा देवी के शरण थे। मैंने एक अकाण्ड ताण्डव आरम्भ किया। बस क्या था, सभी भगत भगतिन नाचने लगे। तब तक कोलाहल हुआ कि प्रसिद्ध पतिव्रता गोवरिकादेवी भगवान् के दर्शन के आ रही हैं। सब लोग अन्धेरे ही में उठ खड़े हुए। धकम धुकी करती हुई गोवरि-कादेवी पहुंचीं। मेरे श्री चरणों के समीप आकर उन्होंने थाल आदि रक्खे। पूजा, अर्चा, आत्मनिवे-दन, तन, मन, धन समर्पण आदि के बाद उन्होंने मेरी आरती उतारनी चाही, पर दियासलाई न थी। सती लोग चाहें तो शरीर से आग निकाल सकती हैं पर तपोव्यय के भय से पतिव्रता ने ऐसा न कर आस पास के लोगों से दियासलाई मांगी जिस पर १५, २० लाख रुपये खर्च से बने हुए जातीय स्कूल के एक छोटे दुग्धमुख बालक ने पाकट से दियास-लाई निकाल फर से अपनी चुरुट भी बाल ली और पतिव्रता के भी बलती ही दियासलाई दे दी। दिया-सलाई के प्रकाश से जरासी मेरी अद्भुत झलक लोगों को आई थी, पर पतिव्रता के आरती उतारने के समय तो स्पष्ट ही ऐसा अद्भुत दर्शन हुआ कि कितने ही नये मतवाले इस दृश्य पर कुछ चक-चकाये से थे। पतिव्रता लोग मुंह नीचा करने लगीं तब तक विद्यान्धकूप श्री खखनदेव शर्म्मा जी ने बड़े उच्चस्वर से शीत्कार किया और बोले "हे प्रियवर व प्रियवरा! क्या कुम्भ के नागा लोगों का धार्मिक दृश्य आप लोग भूल गये? क्या गया, काशीक्षेत्र, हरिद्वार आदि के बड़े बड़े आनन्दान्त स्वामियों का आपको स्मरण नहीं है। आर्य्य सन्तानों की आज भी वही तप में श्रद्धा है, कांटों पर सोने वाले नङ्गे शरीर से शीत आतप आदि में रहने वाले तपस्वियों के देखकर क्या हँसना या क्या मुंह नीचा करना। धिक्कार है आप लोगों को। शोक महाशोक यदि आप लोग ऐसा करें।

सब कोई बोलो 'श्री महाराज की जय।' सब स्त्री पुरुष मुँह ऊपर कर रोमाञ्चित हो गद्गद स्वर से बोले 'श्री बाबा जी की जय'। छोटे बच्चे चिल्ला उठे 'सिलि बाबा की जय।', आरती हुई बाबा का प्रदक्षिण हुआ कितने दर्शकों के पास सस्ते देशी हार्मोनियम, झाल, खंजरी आदि बाजे थे सो बजने लगे। आरती में लोग कपूर आदि देते जाते थे। समीपही हलवाई मण्डी का बाजार था। वहां से दौड़ दौड़ कर लोग कपूर आदि लाते और फेंकते थे कि जिसमें कहीं आरती बुत जाने से फिर श्री जी अदृश्य न हो जायँ। कपूर आदि के लिये श्री खखन देव शर्माजी ने कहा कि एक चन्दा होना चाहिये जिससे आज रात भर जागरण हो। सबने चन्दा दिया पर मगह के आसपास के एक रायबहादुर या राजा बहादुर थे उन्होंने कहा "मैं तो एक धेला चन्दा नहीं दूंगा। मैं ख़ूब जानता हूं कि स्वामी जी या पतिव्रता जी चाहेंगी तो आरती की आग कभी नहीं बुतेगी। अरे नास्तिको! क्या तुमने नहीं सुना है कि पतिव्रताएं अपने शरीर से आग निकालकर चिता पर पति के साथ अब भी भारत में भस्म होती हैं। और भी नहीं सुना है कि ऋषि लोग अपने मुँह से आग निकाल कर अपनी खिचड़ी अलग पकाते थे। और यह भी ख्याल रक्खो कि आरती बलती ही रहे और स्वामीजी चाहें तो क्या प्राणायाम से चट अदृश्य नहीं हो जायँगे।" इसपर पञ्जाब के एक रहस्यवादी ने कहा, 'अजी! गुरु साहब इस समय अदृश्य भी हो जांय तो भगतजन पर कृपाकर साक्षात् निरङ्कार उनका रूप धारण कर जब तक हम लोग यहाँ हैं तब तक नाचते रहेंगे। फिर स्वामीजी आ जायँगे तो वह चले जायँगे'। इस बात पर सखी भाववाले लोग बहुत प्रसन्न हुए और अपने इष्टदेव के रूप में रामजी के आने का वृत्तान्त कहने लगे। इन बातों पर खखन-देव शर्मा जी ने कहा कि "मैं तो हेतुवादी हूं, मैं ख़ुदा और वेद के सिवाय और कुछ नहीं समझता यह सब पौराणिकों की बातें मैं नहीं मानता। यह क्या हवाई किला बाँध रहे हो। एक लात दूँगा किला टूट जायगा! अजी राय साहब पाकिट में पैसा हो तो चन्दा दो नहीं तो यहाँ से घर जाओ। हम लोग घी और कपूर का वैदिक होम करें और तुम दर्शन का मजा लूटो" ऐसा कह कर उसने राय साहब को जो गरदनिया दी कि वह एक खां साहब की नाली में जा पड़े और वहाँ से किसी प्रकार भक्ति बल से उठकर कमर पकड़े हुए श्रीराधे श्री वल्लभ कहते हुए फिर आकर उन्होंने दो पैसा चन्दा कहर कर दिया; और अपने दीवान से बोले कि दो पैसे धर्मखाते में लिख देना। मैं तो इन तमाशों को देखता हुआ उमङ्ग में नाचता जाता था और अङ्गरेज़ी फारसी हिन्दी संस्कृत आदि में गीत गाता जाता था, एकाध नमूने ख्याल हैं जिन्हें आपको सुनाता हूं—

जन्मप्रभृत्यशुद्धानां निष्फलोद्यकर्मणाम्।
अणुमात्र क्षितीशानां पादुकाभिः खचारिणाम्॥
शैशवे विषयेच्छूनां यौवने क्लीवतायुषाम्।
वार्द्धके परिणेतॄणां शौचागारे तनुत्यजाम्॥
खलानामन्वयं वक्ष्ये महावाग्विभवोपिसन्।
तद्दोषः कर्णमागत्य गौरवाय प्रणोदितः॥
कश्चिद्वन्ध्यासुतविरहितः स्वाधिकारप्रमत्तः।
कोपेनास्तंगमितमहिमा कल्पभोग्येन भर्त्तुः॥
मूर्खंश्चक्रे चपलविधवा स्नानरम्योदकेषु
रूढ्येच्छूप्यत्तरुषु वसतिं कामगिर्याश्रमेषु॥

We are Neptunians all,
We are Oh seven and small.
Six are under Railway lines.
I am in the black coal mines,
'Tis the latest fashion in dress,
Straw-hat on the stark nakedness.
The Jogins East and ladies West,
In Me you see all that is the best.

भजन करु भाई भजन करु भाई।
छारि मगरूरि भजन करु भाई॥

यहि भजनिया मे मेवा मलाई।
मरद मेहरारु के सब कर भलाई ॥
श्याम वेद से ऋचा सुनाऊँ।
पौराणों से गाऊँ ॥
तीन चरण सब कोई लगावें।
मैं एक और लगाऊं ॥

ऐसी ही कितनी ही भाषाओं में कितनी गीतें मैंने गाईं। सबका मुझे आज ठीक स्मरण नहीं है। समाधि क्रियाओं से विस्मरण शक्ति कुछ बढ़ गई है। अन्ततः गाते गाते मुझे कुछ उदरशूल सा मालूम पड़ा। अब तो सचमुच अदृश्य होने की इच्छा होने लगी। मैं वहां से त्रिवेणी तट की ओर चला। पीछे पीछे मृदङ्ग आदि बजाते हुए भगत भगतिन आदि भी चले। अन्त को एक दुसाधिन की झोपड़ी के पास मैं ऐसा अदृश्य हुआ कि भगत भगतिन सब मेरे विरह में ऐसे विह्वल हुए कि मेरे झाड़ी की आड़ से देखतेही देखते पतिव्रता गोबरिका देवी के हाथ से आरती की थाली छूट गई और पहिया सी लुड़कते लुड़कते झोपड़ी की फूस की दीवार से जा मिली और झोपड़ी अकस्मात् जलने लगी। सब भगत भगतिन इस भयानक दृश्य को देख भाग चले। गोबरिका देवी अपनी आरती की थाली खोज रही थीं, इतने में पुलीस के पहरेवाले चिल्लाते हुए आ पहुँचे। उनका शब्द सुनतेही थाली का मोह छुड़ाकर वे वहां से भाग पड़ीं।

—:०:—

२० वाँ अध्याय।

प्रातःकाल नगर में बड़ा कोलाहल मचा। दुसाधिन के दो बच्चे और उसकी गैया का एक बच्चा रात को झोपड़ी में आग लग जाने से जल गये थे। नगर में खलभली सी मच गई थी। दरोगा लक्कूरूसिंह ने घोड़े पर आकर सवेरेही बहुतेरों का इजहार लिया था। थाने में आकर उसने पतिव्रता को बुलवाया और आधे घण्टे तक उससे बातें कीं। अन्त को मुझसे महात्मा को भी उसने पकड़वा मँगाया। आधे घण्टे के बाद लक्कूरूसिंह ने पतिव्रता गोबरिका देवी से सबके सामने पूछा कि सुना है कि तू स्वामी जी की भगतिन है और स्वामी जी के साथ झोपड़ी तक गई थी। पतिव्रता ने कहा 'हाँ सरकार।'

'झोपड़ी में आग तेरे सामने लगी?
'हाँ सरकार।'
'कैसे आग लगी?"
'श्री जी कुंज के भीतर गणेश क्रिया करने गये तो वहां से आग की लहर आई।'
'यह थाली किसकी है?'
'मेरी।'
'इस पर नाम किसका है?'
मेरे सिन्दूरदाता का।'
'यह क्यों लाई थी?'
'इसमें स्वामी जी के लिए महाप्रसाद आया था।'
'अच्छा जाओ। जमादार?'
हाँ हुजूर।
'स्वामी जी हाजत में हैं?'
'हाँ हुजूर।'

कोर्ट में चलो। कई सिपाही पहरा दें, स्वामी को कोई कुछ मत खिलाओ। नहीं तो कमबख्त् पाखाना करेगा तो शहर में आग लग जायगी।

इतना कह कर कोतवाल साहब थाने से कचहरी चले। मजिस्टर साहब पहले के हिन्दू थे। इधर विलायत से हो आये थे। स्वामी जी का मुकद्दमा सुनकर लोग कचहरी में भरे हुए थे। इतने में स्वामी जी जमादार के साथ आये। कोर्ट बाबू ने कहा खुदावन्द, फिदवी रिपोर्ट करता है कि श्री १०८ स्वामी मुद्गरानन्द मुजरिम ने शहर के अन्दर पाखाना किया है। मुजरिम हाजत में है।

साहब 'राय चमरूदास जूनियर डिपुटी मजिस्टर के इजलास में १५ तारीख़ को मुद्दई हाजिर हो कोर्ट बाबू—मुद्दालह को हाजत देने का काम नहीं, जामनी पर छोड़ दो, ।' इस पर कोर्ट बाबू बोल उठे खुदावन्द हुजूर ने सब बात बिना सुनेही जामिनी का हुकुम दिया। फिदवी सब कहने नहीं पाया। हुजूर मुक़द्दमा सेशन का है। मुजरिम ने सिर्फ़ आग पाखाना किया है जिससे एक दुसाधिन की झोपड़ी जल गई है। और उससे एक बछवा और दुसाधिन के दो बच्चे मर गये हैं। हुजूर बड़ा खतरा हो गया है। हजूर हिन्दू हैं। गौहत्या और आदमी हत्या होगई है। हजूर मजहब और कानून दोनों की रू से ऐसी बात है कि मुकद्दमा सेसन भेजना होगा। जज साहब जो चाहें सो करेंगे। शहर का कोतवाल लक्करूसिंह ऐसीही रिपोर्ट करता है। उसको बुलाकर सब हालात पूछ लिया जाय और स्वामी जी भी हाजिर हैं।' इस पर साहब हँस पड़े और बोले—पेशकार पागलखाने के सुपरडण्ड को मेरी तरफ से लिखो कि थानेदार लक्करूसिंह पागल हो गया है आदमी सर्कारी खैरखाह है। पचीस वर्ष तक अच्छी नौकरी की है। आज-अच्छे अच्छे मोलवी आलिम एम. ए. वगैरह भी मेसमेरीज़म, थियासोफी कादियान वगैरह के फेर में पड़े हैं और मुर्दों की चिट्ठी वगैरह मँगाया करते हैं। लक्करूसिंह भी किसी ऐसेही फेर में पड़ा हुआ मालूम पड़ता है। आराम होने पर आधी तनखाह पर पागलखाने में रहेगा। हफ्ते हफ्ते मुझे खबर मिले कि इसका पागलपन घटता है, या बढ़ता है।' इस पर लक्करूसिंह हजूर के सामने आकर लंबी सलाम करके बोला—'हजूर मां बाप हैं। हजूर धर्म के अवतार हैं ऐसी बेइनसाफी नहीं होनी चाहिये, फिदवी पागल नहीं है। स्वामी जी के बारे में जो कुछ कहा गया है सब सही है। हजूर गवाह चाहें तो मौजूद हैं। मुजरिम के जुर्म के एक गवाह बन्ध्यापुत्रान्वेषण समाज के महामहोपदेशक मौनमहोदधि विद्यान्धकूप श्री खखनदेव शर्मा जी हैं। और दूसरे गवाह दर्शनरत्न त्रैलोक्यमार्त्तण्ड स्नातक श्री विद्येश्वर जी हैं। दोनों ने आंखों से मुजरिम के जुर्म को देखा है। सनातन धर्म के वार्षिक पिण्डालय और अन्य समाजों के पिण्डालय से हल्ला होने पर बहुत से लोग स्वामी जी के पास आये थे। पिण्डालयों के बलूमटेर कितने ही इस बात के गवाह हैं।" यह सुनकर दर्शनरत्नजी और मौनमहोदधि जी दोनों ही आगे बढ़े। दोनों ही ने कहा 'सरकार! हमन एह बात के जनेऊ कसम कहत हई कि हमन आँखन देखलीं कि स्वामी जी ऐसन काम कइलेन'। साहब बोले 'Well तुम लोग बिना पूछे क्यों बोल उठा है, तुम लोग अभी सामने से चला जाओ नहीं तो तुम को पागलखाना देगा या झूठी गवाही में जेल देगा। चपरासी! इनको निकालो।' दोनों गरदनियाँ देकर निकाले गए। खखनदेव शर्मा कहते गये कि कल क़िले के मैदान में झगरू पाण्डे को सभापति बनाकर इस अन्याय पर व्याख्यान होगा। दर्शनरत्नजी ने कहा 'मैं हितोपदेश के क़ानून से इसी बात पर व्याख्यान दूँगा। इन लोगों के साथ कचहरी से बहुत लोग निकले। तीन लड़के विश्वबल्लभ, सिपारसदास व हरिकृष्ण नाम के, जो बन्ध्यापुत्रान्वेषण-समाज के बलूमटेरों का बैज लगाये थे, बड़े ज़ोर से चिल्लाते गये कि हम लोग गोबरिया, कचरिया, और दही चूड़ा के क़ानून से व्याख्यान देकर अनृत पत्रिका आदि पत्रिकाओं में इन बातों को प्रकाशित कर देंगे और भीतरी बाहरी देशदूषक आदि महात्माओं को भी तार दे देंगे कि आज कैसा अन्याय हुआ। इतने में मैं जो खड़ा था सो भूख प्यास से बेहोश होकर धम से गिरा। साहब ने रोटी शराब मँगा कर देनी चाही पर सब लोग बोले 'स्वामीजी फिर समाधि लेंगे। यह मज़हबी बात है। हजूर इस वक्त खिलाने पिलाने का मौक़ा नहीं है। स्वामीजी ने सत्ययुग में समाधि ली थी सो अब उठे हैं। अब इस भ्रष्टयुग में समाधि लेंगे तो फिर सत्ययुग में उठेंगे। हाकिम लोग बारह लाख वर्ष मुक़द्दमा मुलतवी रक्खें। समाधि के वक्त में मुक़-

इमा करना ख़िलाफ़ मज़हब व ख़िलाफ़ शाही हुक्म के है।' थानेदार बोले 'हजूर ने इसे कुछ खिलाया ग्रैर इसने कहीं पाख़ाना किया तो सारे दफ़्तर में ग्रभी ग्राग लग जायगी।' साहब ने एक की न सुनी। भीड़ हटवा कर .ख़ुद पानी का छींटा देकर मुझे होश में लाकर रोटी खिलाई व शराब पिलाई। सो मैं पाँच सात गिलास ढाल गया। सर्कारी वकील भगत मुर्गावीमल्ल हलुग्रासिया एम० ए०, एल एल० बी० से साहब ने राय लेकर मेरी कम-.ज़ोरी देखकर एक दम छोड़ देना चाहा ग्रैर कहने लगे कि ऐसे ख़फ़ीफ़ जुर्म के लिए एक पगले के कहने पर दूसरे पगले को क्या सतावें। तब तक दो बारिस्टर एक हिन्दू ग्रैर एक मुसल्मान कुछ ग्रापस में बात चीत कर उठे ग्रैर बोले—"Your honour! मुक़द्दमा ग्रसल में सेशन का है। हाई-कोर्ट में रेफ़रेंस (Reference) जाने पर इस कोर्ट की बड़ी शिकायत होगी। हजूर सोच विचार कर काम करें। इस कोर्ट को ऐसे मुजरिम को छोड़ने का कोई हक़ नहीं है। पिनूल कोड के मुताबिक़ यह होमीसाइड ग्रैर ग्रारसन का कसूर है। हुजूर एक ग्रैर भी बात है। हजूर हाकिम हैं। हजूर को मज़-हबी बातों में दख़ल देने का कोई हक़ नहीं है। मुजरिम के .जुर्म को नामुमकिन समझने से सभी मज़हबों में धब्बा लगता है। ख़ास करके हिन्दू मज़हब पर इसका बहुत बड़ा ग्रसर होगा। हुजूर इस .जुर्म को नामुमकिन समझना पाँचवें वेद महा-भारत के खिलाफ़ जायगा ग्रैर पुराणों के खिलाफ़ जायगा"। साहब बहुत ताज्जुब में ग्राकर बोले 'क्या ग्राज समूची कहरी में पागलपन छा गया है। ग्राप लोग क्या बोलता है हम कुछ नहीं समझता। हम ऐसी बातों में टाइम ख़राब करना नहीं मांगता। सर्कारी वकील! ग्रैर कोई मुक़द्दमा है?" Your honour एक भी नहीं' बारिस्टर लोग—'हजूर कोई मुक़द्दमा नहीं है वक्त. ग्राख़िर फज़ूल ही है। हमारी दो बातें हजूर सुन लें।'

'ग्रच्छा कहो।'

'हजूर हिन्दू हैं। महाभारत वग़ैरह ग्रपनी मज़-हबी किताबें हजूर ने देखी होंगी।'

हाकिम—'हम ग्रठारह वर्ष की उमर में विलायत गया संस्कृत नहीं पढ़ा लेकिन दत्त ग्रैर ग्रिफिथ वग़ैरह का तर्जुमा पढ़ा है। मगर महाभारत व इस मुक़द्दमे से क्या तग्रल्लुक है सो समझ में नहीं ग्राता है।' इसी बीच मुझे बोतल का ग्रसर ग्रा पहुँचा। मैं नाचने लगा ग्रैर गाने लगा—

> निपीय यस्य क्षितिभक्षिणः कथां—
> स्तथाद्रियन्ते न खलाः सुरामपि।
> गमिष्यति छत्रित पापमण्डलः
> स राशिरासीत् तमसां मलोज्ज्वलः॥

I am a Neptunian and come to see poor [earth.
How she is hypnotised in gay occult [myth.
Clairvoyance, and planchets and tele-[pathy.
Why telegraphy, why allopathy why [homeopathy.

सब लोग हँसने लगे हाकिम भी हँस पड़े। बारिस्टर लोगों ने किसी प्रकार खाँसी के द्वारा हँसी दबा कर फिर हाकिम से कहा 'हजूर न्याय शास्त्र में चार सबूत कहे गये हैं। शब्द, ग्रनुमान, उपमान ग्रैर प्रत्यक्ष। स्वामी जी के जुर्म के बारे में हुजूर के सामने चारों सबूत पेश किये जाते हैं।

(नं १) महाभारत के शब्दों में साफ़ लिखा है कि उत्तङ्क ऋषि ने घोड़े की दुम फूँकी थी तो पाताल में ग्राग लग चली थी। हयवान घोड़े के बदन से ग्राग निकली। महामहर्षि मज़हबी श्री १०८ स्वामीजी के बदन से ग्राग निकलना क्या मुशकिल है?

(नं २) ग्रनुमान से भी वही बात निकलती है। कितने ही मुल्कों में बड़े बड़े लोग भी शौच के बाद काग़ज़ से शुद्धि कर लेते हैं। मगर हिन्दू लोग

लोटा भर पानी लिए जाते हैं। अगर हिन्दुओं को आग लगने की शङ्का न होती तो वे भी आसानी से काग़ज़ लिए जा सकते थे, खास कर के बी० एन. डबल्यु. रेलवे की गाड़ियों में जहाँ कि नालियों में अकसर पानी नहीं रहता है। इससे अनुमान होता है कि हिन्दुओं को नित्य क्रिया के समय ज़रूर आग लगने की शङ्का रहती है।

(नं० ३) इस बात के लिये उपमान प्रमाण भी है। हाल में प्रसिद्ध घोड़दौड़ वाले महाराजा मंझौली और एकतादर्शन के प्रणेता महाशय खण्डेलवाल भी पायु-प्रक्षालनालय में जल कर मर गए हैं।

(नं० ४) अगर हुज़ूर को इन तीनों सबूतों से यक़ीन न हो तो प्रत्यक्ष प्रमाण भी दिया जा सकता है। अभी स्वामी जी को जुलाब दिया जाय तो हज़ूर यहाँ देख ले सकते हैं कि अभी हिन्दुस्तान के लोगों के बदन से आग निकल सकती है।

इतने ही में मुझे फिर कुछ उदर शूल सा मालूम पड़ने लगा और मैं अपनी जठर तुम्बिका पर हाथ फेरता हुआ नाचने लगा। अब तो लक्कूरूसिंह के हर्ष का पारावार न रहा। वे चिल्ला उठे कि अगर भगवत्कृपा से इस वक्त श्री जी को दस्त आ जावें तो हाकिम लोगों को यक़ीन हो जावे कि महात्माओं में कितनी ताक़त है। इस पर हाकिम की ओर से हुक्म हुआ कि "हम दफ़्र में गड़बड़ नहीं माँगता। चपरासी! लक्कूरूसिंह को व स्वामी जी को यहाँ से बाहर ले जाओ"। हज़ूर बदबू की बात करते हैं। मैं तो समझता हूँ कि दफ़्र में आग लग जायगी और दफ़्र का बुझाना मुश्किल हो जायगा"। ऐसी बातें बकते हुए लक्कूरूसिंह मेरे साथ कचहरी से बाहर हुए और सलाह हुई कि जब हाकिम बासिकिल पर कचहरी से बँगले जाते रहेंगे तब सड़क के नीचे किसी खर-पात के समूह के पास मैं प्रातः क्रिया करता रहूँगा। खर पात में मेरी प्रातः क्रिया से आग लगती हुई देख कर ख़ुद ही हाकिम को अपनी भूलों पर पछतावा होगा।

—:०:—

मनोविकारों का विकाश।

(४)

करुणा।

अन्वय व्यतिरेक की शक्ति के उपरान्त जब बच्चे को कार्य्य-कारण-सम्बन्ध कुछ कुछ प्रत्यक्ष होने लगता है तभी दुःख के उस भेद की नीव पड़ जाती है जिसे करुणा कहते हैं। बच्चा पहले यह देखता है कि जैसे हम हैं वैसे ही ये और प्राणी भी हैं और बिना किसी विवेचना-क्रम के, स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा, वह अपने अनुभवों का आरोप दूसरे प्राणियों पर करता है। फिर कार्य्य-कारण-सम्बन्ध से अभ्यस्त होने पर दूसरों के दुःख के कारण वा कार्य्य को देख कर उनके दुःख का अनुमान करता है और स्वयम् एक प्रकार का दुःख अनुभव करता है। प्रायः देखा जाता है कि जब माँ झूठ मूठ 'ऊँ ऊँ' करके रोने लगती है तब कोई कोई बच्चे भी रो पड़ते हैं।* इसी प्रकार जब उनके किसी भाई वा बहन को कोई मारने उठता है तब वे कुछ चंचल हो उठते हैं।†

दुःख की श्रेणी में परिणाम के विचार से करुणा का उलटा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिस के प्रति उत्पन्न होती है उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। किसी पर प्रसन्न होकर भी लोग उसकी भलाई करते हैं। इस प्रकार पात्र की भलाई की उत्तेजना दुःख और आनन्द दोनों की श्रेणियों में रक्खी गई है। आनन्द की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दुःख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र की भलाई की उत्तेजना करता है। लोभ से, जिसे मैंने आनन्द की श्रेणी में रक्खा है, चाहे कभी कभी और व्यक्तियों वा वस्तुओं को हानि पहुँच जाय

* कार्य्य। † कारण।

पर जिसे जिस व्यक्ति वा वस्तु का लोभ होगा उसकी हानि वह कभी नहीं करेगा। लोभी महमूद ने सोमनाथ को तोड़ा; पर भीतर से जो जवाहरात निकले उनको ख़ूब सहेज कर रक्खा। नूरजहाँ के रूप के लोभी जहाँगीर ने शेर अफ़ग़न को मरवाया पर नूरजहाँ को बड़े चैन से रक्खा।

कभी कभी नम्रता, सज्जनता, धृष्टता, दीनता आदि मनुष्य के स्थायी भाव भी, जिन्हें गुण कहते हैं, तीव्र होकर मनोवेगों का रूप धारण कर लेते हैं पर वे मनोवेगों में नहीं गिने जाते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता है उसके सुख और दुःख का बहुत सा अंश दूसरों की क्रिया वा अवस्था पर निर्भर हो जाता है और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है। वह दूसरों के दुःख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दुःख से दुखी होने का नियम जितना व्यापक है उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी। मैं समझता हूँ, नहीं। हम अज्ञात-कुल-शील मनुष्य के दुःख को देख कर भी दुखी होते हैं। किसी दुखी मनुष्य को सामने देख हम अपना दुखी होना तब तक के लिए बंद नहीं रखते जब तक कि यह न मालूम हो जाय कि वह कैान है, कहाँ रहता है और कैसा है। यह और बात है कि यह जान कर कि जिसे पीड़ा पहुँच रही है उसने कोई भारी अपराध वा अत्याचार किया है हमारी दया दूर वा कम हो जाय। ऐसे अवसर पर हमारे ध्यान के सामने वह अपराध वा अत्याचार आ जाता है और उस अपराधी वा अत्याचारी का वर्त्तमान क्लेश हमारे क्रोध की तुष्टि का साधक हो जाता है। सारांश यह कि करुणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दुख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं। पर आनंदित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देख कर होते हैं जो या तो हमारा सुहृद या सम्बन्धी हो अथवा अत्यन्त सज्जन, शीलवान् वा चरित्रवान् होने के कारण समाज का मित्र वा हितू हो। यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ वा कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनन्द का उदय नहीं होता। इस से प्रकट है कि दूसरों के दुःख से दुखी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है। इसके अतिरिक्त दूसरों को सुखी देख कर जो आनन्द होता है उसका न तो कोई अलग नाम रक्खा गया है और न उसमें वेग वा क्रियोत्पादक गुण है। पर दूसरों के दुःख के परिज्ञान से जो दुःख होता है वह करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना करता है।

जब कि अज्ञात व्यक्ति के दुःख पर दया बराबर उत्पन्न होती है तब जिस व्यक्ति के साथ हमारा अधिक संसर्ग है, जिसके गुणों से हम अच्छी तरह परिचित हैं, जिसका रूप हमें भला मालूम होता है उसके उतने ही दुःख पर हमें अवश्य अधिक करुणा होगी। किसी भोली भाली सुन्दरी रमणी को, किसी सच्चरित्र परोपकारी महात्मा को, किसी अपने भाई बन्धु को दुःख में देख हमें अधिक व्याकुलता होगी। करुणा की यह सापेक्ष तीव्रता जीवननिर्वाह की सुगमता और कार्य्यविभाग की पूर्णता के उद्देश्य से इस प्रकार परिमित की गई है।

मनुष्य की प्रकृति में शील और सात्विकता का आदि संस्थापक यही मनोविकार है। मनुष्य की सज्जनता वा दुर्जनता अन्य प्राणियों के साथ उसके सम्बन्ध वा संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होती है। यदि कोई मनुष्य जन्म से ही किसी निर्जन स्थान में अपना निर्वाह करे तो उसका कोई कर्म्म सज्जनता वा दुर्जनता की कोटि में न आवेगा। उसके सब कर्म्म निर्लिप्त होंगे। संसार में प्रत्येक प्राणी के जीवन का उद्देश्य दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है। अतः सब के उद्देश्यों को एक साथ जोड़ने से संसार का उद्देश्य सुख का स्थापन और दुःख का निराकरण वा बचाव हुआ। अस्तु, जिन कर्म्मों से संसार के इस उद्देश्य का साधन हो वे उत्तम हैं। प्रत्येक प्राणी के

लिए उससे भिन्न प्राणी संसार है। जिन कर्म्मों से दूसरे के वास्तविक सुख का साधन और दुःख की निवृत्ति हो वे शुभ और सात्त्विक हैं तथा जिस अन्तःकरण-वृत्ति से इन कर्म्मों में प्रवृत्ति हो वह सात्त्विक है। कृपा वा प्रसन्नता से भी दूसरों के सुख की योजना की जाती है। पर एक तो कृपा वा प्रसन्नता में आत्मभाव छिपा रहता है और उसकी प्रेरणा से पहुँचाया हुआ सुख एक प्रकार का प्रतीकार है। दूसरी बात यह कि नवीन सुख की योजना की अपेक्षा प्राप्त दुःख की निवृत्ति की आवश्यकता अत्यन्त अधिक है।

दूसरे के उपस्थित दुःख से उत्पन्न दुःख का अनुभव अपनी तीव्रता के कारण मनोवेगों की श्रेणी में माना जाता है पर अपने भावी आचरण द्वारा दूसरे के संभाव्य दुख का ध्यान वा अनुमान, जिसके द्वारा हम ऐसी बातों से बचते हैं जिनसे अकारण दूसरे को दुःख पहुँचे, शील वा साधारण सद्वृत्ति के अन्तर्गत समझा जाता है। बोलचाल की भाषा में तो 'शील' शब्द से चित्त की कोमलता वा मुरौवत ही का भाव समझा जाता है जैसे 'उनकी आँखों में शील नहीं है,' 'शील तोड़ना अच्छा नहीं'। दूसरों का दुःख दूर करना और दूसरों को दुःख न पहुँचाना इन दोनों बातों का निर्वाह करने वाला नियम न पालने का दोषी हो सकता है पर दुःशीलता वा दुर्भाव का नहीं। ऐसा मनुष्य झूठ बोल सकता है पर ऐसा नहीं जिस से किसी का कोई काम बिगड़े वा जी दुखे। यदि वह कभी बड़ों की कोई बात न मानेगा तो इसलिए कि वह उसे ठीक नहीं जँचती या वह उसके अनुकूल चलने में असमर्थ है, इसलिए नहीं कि बड़ों का अकारण जी दुखे। मेरे विचार के अनुसार 'सदा सत्य बोलना,' 'बड़ों का कहना मानना' आदि नियम के अन्तर्गत हैं, शील वा सद्भाव के अन्तर्गत नहीं। झूठ बोलने से बहुधा बड़े बड़े अनर्थ हो जाते हैं इसी से उसका अभ्यास रोकने के लिए यह नियम कर दिया गया कि किसी अवस्था में झूठ बोला ही न जाय। पर मनोरंजन, ख़ुशामद, और शिष्टाचार आदि के बहाने संसार में बहुत सा झूठ बोला जाता है जिस पर कोई समाज कुपित नहीं होता। किसी किसी अवस्था में तो धर्म्मग्रन्थों में झूठ बोलने की इजाज़त तक दे दी गई है विशेषतः जब इस नियमभंग द्वारा अन्तःकरण की किसी उच्च और उदार वृत्ति का साधन होता हो। यदि किसी के झूठ बोलने से कोई निरपराध और निःसहाय व्यक्ति अनुचित दण्ड से बच जाय तो ऐसा झूठ बोलना बुरा नहीं बतलाया गया है क्योंकि नियम शील वा सद्वृत्ति का साधक है, समकक्ष नहीं। मनोवेग-वर्जित सदाचार केवल दम्भ है। मनुष्य के अन्तःकरण में सात्त्विकता की ज्योति जगानेवाली यही करुणा है। इसी से जैन और बौद्ध धर्म में इसको बड़ी प्रधानता दी गई है और गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है—

पर-उपकार सरिस न भलाई।
पर-पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

यह बात स्थिर और निर्विवाद है कि श्रद्धा का विषय किसी न किसी रूप में सात्त्विकशीलता ही है। अतः करुणा और सात्त्विकता का सम्बन्ध इस बात से और भी प्रमाणित होता है कि किसी पुरुष को दूसरे पर करुणा करते देख तीसरे को करुणा करने वाले पर श्रद्धा उत्पन्न होती है। किसी प्राणी में और किसी मनोवेग को देख श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती। किसी को क्रोध, भय, ईर्षा, घृणा, आनंद आदि करते देख लोग उस पर श्रद्धा नहीं कर बैठते। यह दिखलाया ही जा चुका है कि प्राणियों की आदि अन्तःकरण वृत्ति मन वा मनोवेग हैं। अतः इन मनोवेगों में से जो श्रद्धा का विषय हो वही सात्त्विकता का आदि-संस्थापक ठहरा। दूसरी बात यह भी ध्यान देने की है कि मनुष्य का आचरण मनोवेग वा प्रवृत्ति ही का फल है। बुद्धि दो वस्तुओं के रूपों को अलग अलग दिखला देगी, यह मनुष्य के मनोवेग पर है कि वह उनमें से किसी एक को चुनकर कार्य्य में प्रवृत्त हो। कुछ दार्शनिकों ने तो यहाँ तक दिखलाया है कि हमारे निश्चयों का अंतिम आधार

अनुभव या कल्पना की तीव्रता ही है, बुद्धि द्वारा स्थिर की हुई कोई वस्तु नहीं। गीली लकड़ी को आग पर रखने से हमने एक बार धुआँ उठते देखा, दस बार देखा, हज़ार बार देखा अतः हमारी कल्पना में यह व्यापार जम गया और हमने निश्चय किया कि गीली लकड़ी आग पर रखने से धुआँ होता है। यदि विचार कर देखा जाय तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि अन्तःकरण की सारी वृत्तियां केवल मनोवेगों की सहायक हैं, वे मनोवेगों के लिए उपयुक्त विषय मात्र ढूँढती हैं। मनुष्य की प्रवृत्ति पर कल्पना को और मनोवेगों को तीव्र करनेवाले कवियों का प्रभाव प्रकट ही है।

प्रिय के वियोग से जो दुःख होता है वह भी करुणा कहलाता है क्योंकि उसमें दया वा करुणा का अंश भी मिला रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि करुणा का विषय दूसरे का दुःख है। अतः प्रिय के वियोग में इस विषय की सम्प्राप्ति किस प्रकार होती है यह देखना है। प्रत्यक्ष निश्चय कराता है और परोक्ष अनिश्चय में डालता है। प्रिय व्यक्ति के सामने रहने से उसके सुख का जो निश्चय होता रहता है वह उसके दूर हने से अनिश्चय में परिवर्त्तित हो जाता है। अस्तु, प्रिय के वियोग पर उत्पन्न करुणा का विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। जो करुणा हमें साधारण जनों के वास्तविक दुःख के परिज्ञान से होती है वही करुणा हमें प्रिय जनों के सुख के अनिश्चय मात्र से होती है। साधारण जनों का तो हमें दुःख असह्य होता है पर प्रिय जनों के सुख का अनिश्चय ही। अनिश्चित बात पर सुखी, वा दुखी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है इसी से इस प्रकार के दुःख वा करुणा को किसी किसी प्रान्तिक भाषा में 'मोह' भी कहते हैं। सारांश यह कि प्रिय के वियोग-जनित दुःख में जो करुणा का अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। राम जानकी के वन चले जाने पर कौशल्या उनके सुख के अनिश्चय पर इस प्रकार दुखी होती हैं—

बन को निकरि गए दोउ भाई।
सावन गरजै, भादौं बरसै, पवन चलै पुरवाई।
कौने बिरिछ तर भीजत ह्वै हैं राम लखन दोउ भाई॥
(—गीत।)

प्रेमी को यह विश्वास कभी नहीं होता कि उसके प्रिय के सुख का ध्यान जितना वह रखता है उतना संसार में और भी कोई रख सकता है। श्रीकृष्ण गोकुल से मथुरा चले गए जहाँ सब प्रकार का सुख-वैभव था पर यशोदा इसी सोच में मरती रही कि—

प्रात समय उठि माखन रोटी को बिन मांगे दैहै ?
को मेरे बालक कुँवर कान्ह को छिन छिन आगो लैहै ?

और उद्धव से कहती हैं—

सँदेसो देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की कृपा करत ही रहियो॥
उबटन, तेल और तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोइ जोइ मांगत सोइ सोइ देती क्रम क्रम करिके न्हाते॥
तुमतो टेव जानतिहि ह्वै हौ तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतहि माखन रोटी भावै॥
अब यह सूर मोहि निसि बासर बड़ो रहत जिय सोच।
अब मेरे अलकलड़ैते लालन ह्वै हैं करत सँकोच॥

वियोग की दशा में गहरे प्रेमियों को प्रिय के सुख का अनिश्चय ही नहीं कभी कभी घोर अनिष्ट की आशंका तक होती है जैसे एक पति-वियोगिनी स्त्री संदेह करती है कि—

नदी किनारे धुआँ उठत है, मैं जानूँ कछु होय।
जिसके कारण मैं जली, वही न जलता होय॥

प्रिय के वियोग-जनित दुःख में जो करुणा का अंश होता है उसे तो मैंने दिखलाया किन्तु ऐसे दुःख का प्रधान अंग आत्मपक्ष-सम्बन्धी एक और ही प्रकार का दुःख होता है जिसे शोक कहते हैं। जिस व्यक्ति से किसी को घनिष्ठता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार होता है। उसके जीवन का बहुत सा अंश उसी के सम्बन्ध द्वारा व्यक्त होता है।

मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है। संसार तो कहने सुनने के लिए है, वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वेही लोग हैं जिनसे उसका संसर्ग वा व्यवहार है। अतः ऐसे लोगों में से किसी का दूर होना उसके लिए उसके संसार के एक अंश का उठ जाना वा जीवन के एक अंश का निकल जाना है। किसी प्रिय वा सुहृद के चिरवियोग वा मृत्यु के शोक के साथ करुणा वा दया का भाव मिल कर चित्त को बहुत व्याकुल करता है। किसी के मरने पर उसके प्राणी उसके साथ किए हुए अन्याय वा कुव्यवहार, तथा उसकी इच्छा-पूर्ति के निमित्त अपनी त्रुटियों को स्मरण कर और यह सोच कर कि उसकी आत्मा को सन्तुष्ट करने की सम्भावना सब दिन के लिए जाती रही बहुत अधीर और विकल होते हैं।

सामाजिक जीवन की स्थिति और पुष्टि के लिये करुणा का प्रसार आवश्यक है। समाज-शास्त्र के पश्चिमी ग्रन्थकार कहा करें कि समाज में एक दूसरे की सहायता अपनी अपनी रक्षा के विचार से की जाती है; यदि ध्यान से देखा जाय तो कर्मक्षेत्र में परस्पर सहायता की सच्ची उत्तेजना देनेवाली किसी न किसी रूप में करुणा ही दिखाई देगी। मेरा यह कहना नहीं कि परस्पर की सहायता का परिणाम प्रत्येक का कल्याण नहीं है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि संसार में एक दूसरे की सहायता विवेचना द्वारा निश्चित इस प्रकार के दूरस्थ परिणाम पर दृष्टि रख कर नहीं की जाती बल्कि मन की प्रवृत्ति-कारिणी प्रेरणा से की जाती है। दूसरे की सहायता करने से अपनी रक्षा की भी सम्भावना है इस बात वा उद्देश्य का ध्यान प्रत्येक, विशेष कर सच्चे सहायक को तो नहीं रहता। ऐसे विस्तृत उद्देश्यों का ध्यान तो विश्वात्मा स्वयं रखती है; वह उसे प्राणियों की बुद्धि ऐसी चंचल और परस्पर भिन्न वस्तु के भरोसे नहीं छोड़ती। किस युग में और किस प्रकार मनुष्यों ने समाज-रक्षा के लिए एक दूसरे की सहायता करने की गोष्ठी की होगी यह समाज-शास्त्र के बहुत से वक्ता लोग ही जानते होंगे। यदि परस्पर सहायता की प्रवृत्ति पुरखों की उस पुरानी पंचायत ही के कारण होती और यदि उसका उद्देश्य वहीं तक होता जहाँ तक ये समाज-शास्त्र के वक्ता बतलाते हैं तो हमारी दया मोटे, मुसंडे और समर्थ लोगों पर जितनी होती उतनी दीन, अशक्त और अपाहज लोगों पर नहीं जिन से समाज को उतना लाभ नहीं। पर इसका बिलकुल उलटा देखने में आता है। दुखी व्यक्ति जितना ही अधिक असहाय और असमर्थ होगा उतनी ही अधिक उसके प्रति हमारी करुणा होगी। एक अनाथ अबला को मार खाते देख हमें जितनी करुणा होगी उतनी एक सिपाही वा पहलवान को पिटते देख नहीं। इससे स्पष्ट है कि परस्पर साहाय्य के जो व्यापक उद्देश्य हैं उनका धारण करनेवाला मनुष्य का छोटा सा अन्तःकरण नहीं विश्वात्मा है।

दूसरे के थोड़े क्लेश, वा दूसरे की करुणा पर जो वेगरहित दुःख होता है उसे सहानुभूति कहते हैं। शिष्टाचार में इस शब्द का प्रयोग इतना अधिक होने लगा है कि यह निकम्मा सा हो गया है। अब प्रायः इस शब्द से हृदय का कोई सच्चा भाव नहीं समझा जाता है। सहानुभूति के तार, सहानुभूति की चिट्ठियाँ लोग यों ही भेजा करते हैं। यह छद्म-शिष्टता मनुष्य के व्यवहार से सच्चाई के अंश को क्रमशः निकालती जा रही है।

पहले दिखलाया जा चुका है कि करुणा अनावर्त्ती मनोवेगों में से है अर्थात् जिस पर करुणा की जाती है वह बदले में करुणा करनेवाले पर भी करुणा नहीं करता (जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है) बल्कि कृतज्ञता, श्रद्धा वा प्रीति करता है। बहुत सी औपन्यासिक कथाओं में यह बात दिखलाई गई है कि युवतियाँ दुष्टों के हाथ से अपना उद्धार करनेवाले युवकों के प्रेम में फँस गई हैं। उद्वेगशील बंगाली उपन्यासलेखक करुणा और प्रीति के मेल से बड़े ही प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित करते हैं।

मनुष्य के प्रत्यक्ष ज्ञान में देश और काल की परिमिति अत्यन्त संकुचित होती है। मनुष्य जिस वस्तु को जिस समय और जिस स्थान पर देखता है उसकी उसी समय और उसी स्थान की अवस्था का अनुभव उसे होता है। पर स्मृति, अनुमान वा उपलब्ध ज्ञान के सहारे मनुष्य का ज्ञान इस परिमिति को लाँघता हुआ अपना देश और काल-संबन्धी विस्तार बढ़ाता है। उपस्थित विषय के संबन्ध में उपयुक्त भाव प्राप्त करने के लिए यह विस्तार कभी कभी आवश्यक होता है। मनोवेगों की उपयुक्तता कभी कभी इस विस्तार पर निर्भर रहती है। किसी मार खाते हुए अपराधी के विलाप पर हमें दया आती है पर जब हम सुनते हैं कि कई स्थानों पर कई बार वह बड़े बड़े अपराध कर चुका है इससे आगे भी ऐसे ही अत्याचार करेगा तो हमें अपनी दया की अनुपयुक्तता मालूम हो जाती है। ऊपर कहा जा चुका है कि स्मृति और अनुमान आदि केवल मनोवेगों के सहायक हैं अर्थात् प्रकारान्तर से वे मनोवेगों के लिए विषय उपस्थित करते हैं। ये कभी तो आप से आप विषयों को मन के सामने लाते हैं। कभी किसी विषय के सामने आने पर ये उससे सम्बन्ध (पूर्वापर वा कार्य्यकारण-संबन्ध) रखनेवाले और बहुत से विषय उपस्थित करते हैं जो कभी तो सब के सब एक ही मनोवेग के विषय होते हैं और उस प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न मनोवेग को तीव्र करते हैं, कभी भिन्न भिन्न मनोवेगों के विषय हो कर प्रत्यक्ष विषय से उत्पन्न मनोवेग को परिवर्त्तित वा धीमा करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मनोवेग वा प्रवृत्ति को मंद करनेवाली, स्मृति, अनुमान, वा बुद्धि आदि कोई दूसरी अन्तःकरण वृत्ति नहीं है, मन की क्रिया वा अवस्था ही है।

मनुष्य की सजीवता मनोवेग वा प्रवृत्ति ही में है। नीतिज्ञों और धार्म्मिकों का मनोवेगों को दूर करने का उपदेश घोर पाखंड है। इस विषय में कवियों का प्रयत्न ही सच्चा है जो मनोविकारों पर शान ही नहीं चढ़ाते बल्कि उन्हें परिमार्जित करते हुए सृष्टि के पदार्थों के साथ उनके उपयुक्त संबन्ध-निर्वाह पर ज़ोर देते हैं। यदि मनोवेग न हों तो स्मृति, अनुमान, बुद्धि आदि के रहते भी मनुष्य बिलकुल जड़ है। प्रचलित सभ्यता और जीवन की कठिनता से मनुष्य अपने इन मनोवेगों को मारने और अशक्त करने पर विवश होता जाता है, इनका पूर्ण और सच्चा निर्वाह उसके लिए कठिन होता जाता है और इस प्रकार उसके जीवन का स्वाद निकलता जाता है। वन, नदी, पर्वत आदि को देख आनन्दित होने के लिए अब उसके हृदय में उतनी जगह नहीं। दुराचार पर उसे क्रोध वा घृणा होती है पर झूठे शिष्टाचार के अनुसार उसे दुराचारी की भी मुँह पर प्रशंसा करनी पड़ती है। जीवन-निर्वाह की कठिनता से उत्पन्न स्वार्थ के कारण उसे दूसरे के दुःख की ओर ध्यान देने, उस पर दया करने और उसके दुःख की निवृत्ति का सुख प्राप्त करने की फुरसत नहीं। इस प्रकार मनुष्य हृदय को दबा कर केवल क्रूर आवश्यकता और कृत्रिम नियमों के अनुसार ही चलने पर विवश और कठपुतली सा जड़ होता जाता है--उसकी भावुकता का नाश होता जाता है। पाखंडी लोग मनोवेगों का सच्चा निर्वाह न देख, हताश हो मुँह बना बना कर कहने लगे हैं—"करुणा छोड़ो, प्रेम छोड़ो, क्रोध छोड़ो, आनंद छोड़ो। बस हाथ और पैर हिलाओ, काम करो"।

यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है और मनोवेग के अनुसार क्रिया करना और बात, पर अनुसारी परिणाम के निरन्तर अभाव से मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो चार बार उसे दया उत्पन्न होगी पर जब बार बार उस पर दया का कोई अनुसारी परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे धीरे उसका दया का अभ्यास कम होने लगेगा।

बहुत से ऐसे अवसर आ पड़ते हैं जिनमें करुणा आदि मनोवेगों के अनुसार काम नहीं किया जा

सकता पर ऐसे अवसरों की संख्या का बहुत बढ़ना ठीक नहीं है। जीवन में मनोवेगों के अनुसारी परिणामों का विरोध प्रायः तीन वस्तुओं से होता है—१ आवश्य, २ नियम और ३ न्याय। हमारा कोई नौकर बहुत बुड्ढा और कार्य्य करने में अशक्त हो गया है जिससे हमारे काम में हर्ज होता है। हमें उसकी अवस्था पर दया तो आती है पर आवश्यकता के अनुरोध से उसे अलग करना पड़ता है। किसी दुष्ट अफ़सर के कुवाक्य पर क्रोध तो आता है पर मातहत लोग आवश्यकता के वश उस क्रोध के अनुसार कार्य्य करने की कौन कहे उसका चिह्न तक नहीं प्रकट होने देते। अब नियम को लीजिए। यदि कहीं पर यह नियम है कि इतना रुपया देकर लोग कोई कार्य्य करने पावें तो जो व्यक्ति रुपया वसूल करने पर नियुक्त होगा वह किसी ऐसे हीन अकिंचन को देख जिसके पास एक पैसा भी न होगा दया तो करेगा पर नियम के वशीभूत हो उसे वह उस कार्य्य को करने से रोकेगा। राजा हरिश्चन्द्र ने अपनी रानी शैव्या से अपने ही मृत पुत्र के कफन का टुकड़ा फड़वा नियम का अद्भुत पालन किया था। पर यह समझ रखना चाहिए कि यदि शैव्या के स्थान पर कोई दूसरी दुखिया स्त्री होती तो राजा हरिश्चन्द्र के उस नियम-पालन का उतना महत्त्व न दिखाई पड़ता, करुणा ही लोगों की श्रद्धा को अपनी ओर अधिक खींचती। करुणा का विषय दूसरे का दुःख है। अपना दुःख नहीं। आत्मीय जनों का दुःख एक प्रकार से अपना ही दुःख है इससे राजा हरिश्चन्द्र के नियम पालन का जितना स्वार्थ से विरोध था उतना करुणा से नहीं।

न्याय और करुणा का विरोध प्रायः सुनने में आता है। न्याय से उपयुक्त प्रतीकार का भाव समझा जाता है। यदि किसी ने हमसे १०००) उधार लिए तो न्याय यह है कि वह हमें १०००) लौटा दे। यदि किसी ने कोई अपराध किया तो न्याय यह है कि उसको दंड मिले। यदि १०००) लेने के उपरान्त उस व्यक्ति पर कोई आपत्ति पड़ी और उसकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई तो न्याय पालने के विचार का विरोध करुणा कर सकती है। इसी प्रकार यदि अपराधी मनुष्य बहुत रोता गिड़गिड़ाता है और कान पकड़ता है और पूर्ण दंड की अवस्था में अपने परिवार की घोर दुर्दशा का वर्णन करता है तो न्याय के पूर्ण निर्वाह का विरोध करुणा कर सकती है। ऐसी अवस्थाओं में करुणा करने का सारा अधिकार विपक्षी अर्थात् जिसका रुपया चाहिए वा जिसका अपराध किया गया है उसको न्यायकर्त्ता वा तीसरे व्यक्ति को नहीं। जिसने अपनी कमाई के १०००) अलग किए, वा अपराध द्वारा जो क्षति-ग्रस्त हुआ विश्वात्मा उसी के हाथ में करुणा ऐसी उच्च सद्वृत्ति के पालन का शुभ अवसर देती है। करुणा सेंत का सौदा नहीं है। यदि न्यायकर्त्ता को करुणा है तो वह उसकी शान्ति पृथक् रूप से कर सकता है, जैसे ऊपर लिखे मामलों में वह चाहे तो दुखिया ऋणी को हज़ार पाँच सौ अपने पास से दे दे वा दंडित व्यक्ति तथा उसके परिवार की और प्रकार से सहायता कर दे। उसके लिए भी करुणा का द्वार खुला है।

—:०:—

कनफूची।

(ले० बाबू रामचन्द्र वर्म्मा)

आदि पुस्तक का दूसरा ग्रन्थ सूकिंग एक संग्रह है। चीन के प्राचीन इतिहास का यह सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें चीन राज्य के स्थापनकाल से कनफूची के समय तक का सविस्तर वर्णन है। हमारे पुराणों की भाँति इस ग्रन्थ में भी धर्म्मनीति के उपदेश हैं। अनेक प्राचीन ग्रन्थों में से मुख्य और आवश्यक अंशों का संग्रह करके कनफूची ने यह ग्रन्थ बनाया था। आदि पुस्तक के तीसरे ग्रन्थ सीकिंग में काव्य और संगीत है। उसका कुछ अंश कनफूची की रचना और कुछ संगृहीत है। इसमें की कविता और गीतों को चीनी प्रायः कण्ठ करते

हैं। इस पुस्तक में संगीत-शास्त्र पर कनफ़ूची के लिखे हुए कई प्रबन्ध भी हैं। इस पुस्तक से चीनियों की रीति नीति और आचार व्यवहार का अच्छा पता चलता है।

कनफ़ूची का लीकिंग चौथा ग्रन्थ सबसे बड़ा है। इसके विषय,—स्मृति और व्यवस्था हैं। इसमें धर्म्म-कर्म्म की विधि और व्यवस्था वर्णित है। अभी इस बात का कोई निर्णय नहीं हो सका है कि इस पुस्तक का मूल अंश कनफ़ूची की रचना है या और किसी की। पाँचवें ग्रन्थ चुंग्छिऊ में कनफ़ूची की जन्मभूमि लू-राज्य का प्राचीन इतिहास है। चुंग शब्द का अर्थ बसन्तकाल और छिऊ शब्द का अर्थ शरत्काल है। कनफ़ूची ने इस पुस्तक का लिखना वसन्तकाल में आरम्भ किया था और शरत्काल में उसे समाप्त किया था; इसी लिए उसका नाम चुंकछिऊ रक्खा गया। यह उनकी वृद्धावस्था की रचना है। इसमें ईम से लेकर गई तक के राजत्वकाल (चौदह वर्ष) का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ समाप्त कर चुकने पर कनफ़ूची ने उसे अपने शिष्यों के हाथ में देकर कहा था कि "यदि मेरी रचना से मेरी कुछ यशोवृद्धि होगी तो इसी ग्रन्थ से होगी।" इस पुस्तक में ईश्वर या अध्यात्म-सम्बन्धी कोई उपदेश नहीं है। यह पुस्तक प्रश्नोत्तरी स्वरूप है। प्रत्येक विषय की प्रशंसा में उन्होंने कार्य्य-कारण का सम्बन्ध दिखाया है। एक स्थान पर प्रश्न किया गया है—मृत्यु क्या है? और उसका उत्तर दिया गया है—जब हम यही नहीं जानते कि जीवन क्या है, तो हम मृत्यु की व्याख्या किस प्रकार कर सकते हैं।

ईसा से ४४१ वर्ष पूर्व कनफ़ूची के एक मात्र पुत्र ली का देहान्त हो गया। कनफ़ूची की जीवनी में उनके पुत्र का कोई विशेष उल्लेख नहीं पाया जाता। उसमें केवल एक घटना का उल्लेख है जिससे मालूम होता है कि वह अपने पुत्र को किस प्रकार उपदेश दिया करते थे। एक बार कनफ़ूची के किसी शिष्य ने ली से पूछा—"जितने विषयों की शिक्षा हम लोगों को दी गई है, उनके सिवा तुमने और भी किसी विषय की शिक्षा पाई है या नहीं?" ली ने उत्तर दिया—"नहीं, मुझे किसी और विषय की शिक्षा नहीं मिली है। एक बार पिता जी ने मुझसे पूछा था कि तुमने गीतों की पुस्तक पढ़ी है या नहीं। मैंने कहा—नहीं। इस पर वे बोले कि यदि तुम वह पुस्तक न पढ़ोगे तो कथोपकथन करने के योग्य न हो सकोगे। इसी प्रकार और एक बार उन्होंने मुझसे पूछा था कि तुमने आचार-व्यवहार-सम्बन्धी मेरा ग्रन्थ पढ़ा है या नहीं, पर मैंने वह ग्रन्थ भी नहीं पढ़ा था, इसलिए उन्होंने मुझसे कहा कि यदि तुम वह ग्रन्थ न पढ़ोगे तो तुम्हारा चरित्र कभी ठीक न रह सकेगा। इस पर उस शिष्य ने ली से कहा—"हम लोगों से भी येही दोनों बातें कही गई हैं। इसके सिवा एक बात और अधिक कही गई है और वह यह है कि विज्ञ लोग कभी अपने पुत्र के लिए किसी विशेष शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करते।"

ली की मृत्यु के एक वर्ष बाद कनफ़ूची के इयेन-हिऊ नामक शिष्य का देहान्त हो गया। इस दुर्घटना से कनफ़ूची को बहुत अधिक दुःख हुआ। एक वर्ष बाद, एक बार की-कंग शिकार करने गया और वहाँ से सींगवाला एक अद्भुत जीव पकड़ लाया। अब कोई उसका नाम न बतला सका तो कनफ़ूची की बुलाहट हुई। कनफ़ूची ने आकर कहा कि इसका नाम की-लिन है। लोग कहते हैं कि कनफ़ूची के जन्म से पूर्व वह जानवर एक बार एक पर्वत पर उनकी माता को स्वप्न में दिखाई दिया था, और उनकी माता ने उसके सींग के एक फीता बाँध दिया था। वह फीता उस समय भी उसके सींग में बँधा हुआ मिला! उस पशु को देख कर कुछ लोग अमंगल की आशंका करने लगे। उस अवसर पर प्रसंग पड़ने पर कनफ़ूची ने कहा था—"किसी महात्मा का नाम कभी लुप्त नहीं होता; लेकिन मेरे उद्देश्यों का प्रचार उचित रूप से नहीं हुआ इसलिए मैं नहीं कह सकता कि भविष्य में लोग मुझे किस दृष्टि से देखेंगे।"

एक दिन प्रातःकाल कनफूची अपने मकान के दरवाजे पर टहलते हुए, संसार के नश्वर होने के सम्बन्ध में एक गीत गा रहे थे। इतने में ज़ीकिंग वहाँ आ पहुँचा। उसे देखकर कनफूची ने कहा —इतने दिनों बाद एक व्यक्ति आ रहा है, जिसे मैं गुरु बनाऊँगा। अब मेरा अन्त समय निकट आ गया है।" इतना कह कर वह अन्दर अपने बिस्तर पर लेट गये और सात दिन बाद उनकी मृत्यु होगई।

उनके शिष्यों ने बड़े समारोह से उनकी अन्तिम क्रिया की। मृत्यु के बाद चीन-वासियों को उनका अभाव मालूम होने लगा; इसलिए उनकी मृत्यु के कारण बहुत दिनों तक देश में शोक छाया रहा। उनके बहुत से शिष्यों ने उनके समाधि-स्थान पर कुटियाँ बनाईं और उसी में वे लोग बहुत दिनों तक निवास करते थे।

क्यू-फो नगर के बाहर कं-वंश का समाधि-स्थान था। वहीं पर कनफूची की भी समाधि बनाई गई। उसके पासही एक बहुत ऊँचा स्तम्भ है जिस पर कनफूची की संगमरमर की मूर्त्ति बनी हुई है। इस समय उसके चारों ओर सुन्दर लताएँ और कुंज हैं। मूर्त्ति के नीचे स्यांग राजवंश की ओर से पत्थर पर खुदा हुआ एक लेख है जिसमें लिखा है कि ये बड़े बड़े ज्ञानियों में अग्रगण्य, सर्वविद्यानिपुण और सर्व्वज्ञ सम्राट् थे।

उस स्तम्भ के दोनों ओर दो और छोटे स्तम्भ और समाधियाँ हैं। एक समाधि स्त्री की और दूसरी उसके पुत्र की है। पास ही वह स्थान भी है जहाँ उनके शिष्य ज़ीकिंग ने अपने गुरु के शोक में पागल होकर अपने जीवन के शेष छः वर्ष बिताये थे। समाधि-स्तम्भ पर बनी हुई मूर्त्ति से मालूम होता है कि कनफूची बड़े हृष्ट पुष्ट और अच्छे डील डौल के थे। उनका मुखमण्डल पूर्णता-प्राप्त और मस्तक बृहत् था। इसके सिवा उनके शरीर में ४९ विशेष चिह्न थे।

कनफूची जिस समय राजसभा में राजा या शून्य सिंहासन के पास जाते थे, उस समय उनकी स्वतन्त्रता मानों नष्ट सी हो जाती थी। उनका गला रुँध जाता था और शरीर काँपने लगता था। आवश्यकता पड़ने पर जब कभी उन्हें राजचिह्न आदि धारण करने पड़ते थे, उस समय उनका शरीर बिलकुल बेबस सा हो जाता था। यदि कभी वे बीमार पड़ते और राजा तथा उनके परिवार के लोग उन्हें देखने के लिए आते तो वे उसी समय सब उचित वस्त्र आदि पहन कर तैयार हो जाते थे। दुर्भिक्ष आदि के लिए प्रति वर्ष जो उत्सव हुआ करते थे, उनमें वे बड़े उत्साह से सम्मिलित होते थे। वे सदा बड़े संयम से रहते थे और खाने पीने में दूसरी किसी तरह की बदपरहेज़ी न करते थे और भोजन के समय बातें अधिक करते थे। कभी कभी वे थोड़ी मदिरा भी पीते थे। जहाँ तक हो सकता वे भूखों तथा दीन दुःखियों की सहायता किया करते थे। मार्ग में वे बड़ी नम्रता से लोगों का अभिवादन करते थे, और सब छोटे बड़ों का समान रूप से आदर करते थे। तात्पर्य्य यह कि वे लोगों को केवल उपदेश देना ही न जानते थे, बल्कि वे स्वयं आदर्श-पुरुष थे।

संगीत से उन्हें बहुत प्रेम था और उसमें वे बहुत निपुण भी थे। उनका मत था कि बिना संगीत की सहायता के मनुष्य के हृदय में कभी जागृति नहीं हो सकती। नीति के अवलम्बन से चरित्र-गठन अवश्य होता है, लेकिन बिना संगीत के वह गठन अपूर्ण रह जाता है। कहीं गाना या उनका ज़िक्र सुनते ही कनफूची पागल से हो जाते थे; और यदि किसी को उनके विरुद्ध कुछ करते हुए देखते तो उससे झगड़ने और तर्क करने लग जाते थे।

कनफूची सदा नीति की शिक्षा दिया करते थे। उनके उपदेशों में दर्शन और विज्ञान-सम्मत व्यवहार-नीति, समाज-नीति और राज-नीति ही रहती थी। धर्म्म, कर्म्म या मत और विश्वास के सम्बन्ध में वे अधिक नहीं कहते थे। सर्वसाधारण के लिए उन्होंने एक व्यवहार-शास्त्र भी बनाया था। उसका नाम है लीकिंग। उसमें मनुष्य-जीवन के मुख्य कर्त्तव्यों की विवेचना की गई है। उसमें पिता, माता

तथा बड़ों के साथ व्यवहार करने और उत्तम जीवन व्यतीत करने के नियम दिये गये हैं। उनके मत से परिवार एक जाति का छोटा स्वरूप था, जिस प्रकार पिता का अधिकार समस्त परिवार पर होता है, उसी प्रकार एक राजा का अधिकार समस्त जाति या देश पर होना चाहिए। इसी आधार पर उन्होंने सारी समाज और राजनीति की स्थापना की थी। आज तक भी इन नियमों में भी चीनवालों ने बहुत ही कम परिवर्त्तन किया है।

किसी किसी के मत से कनफूची नास्तिक थे और वे ईश्वर की सत्ता नहीं मानते थे। लेकिन अपने दर्शन-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों में वे लिख गये हैं कि वास्तविक शून्य से किसी चीज़ की उत्पत्ति सम्भावित नहीं है। अवश्य ही अनादि अनन्त काल से कोई मूल पदार्थ वर्त्तमान है। वह मूल या कारण अनन्त, अक्षय, असीम, सर्व्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी है। उस शक्ति का केन्द्रस्थल नील आकाश है और वहीं से सब कारणों का कार्य्य आरम्भ होता है। वहीं से समस्त संसार में वह शक्ति फैलती है।

उनके मत से मनुष्य का शरीर दो प्रकार के तत्त्वों से मिलकर बना है। एक तत्त्व सूक्ष्म, अदृश्य और ऊर्ध्वगामी है और दूसरा स्थूल, इन्द्रिय-ग्राह्य और अधोगामी। जब ये दोनों तत्त्व एक दूसरे से पृथक् होते हैं तो सूक्ष्म अंश आकाश की ओर चला जाता है और स्थूल अंश पृथ्वी में मिल जाता है। उनके मत से मृत्यु कोई चीज़ नहीं है। स्थूल शरीर तो मिट्टी में मिल कर नष्ट हो जाता है पर सूक्ष्म शरीर आकाश में सदा वर्त्तमान रहता है और कभी कभी इस पृथ्वी पर अपने पूर्व निवास-स्थान पर भी आ जाता है। यदि उसके परिवार के लोग उसका पूजन आदि करें तो वह प्रसन्न होकर उनका मंगल करता है। इसी लिए चीन में मृतक पितरों के लिए मन्दिर बनाने और उनके उत्सव मनाने का नियम है। ऐसे अवसरों पर वे लोग इतनी अधिक श्रद्धा और भक्ति दिखलाते हैं कि देखनेवालों को बहुत आश्चर्य्य होता है।

कनफूची या उनके शिष्य ईश्वर का कोई आकार नहीं मानते थे और न उसके किसी अवतार या प्रतिमा की ही कल्पना करते थे। वे अदृष्टवाद स्वीकार करते थे। उनके कुछ मुख्य उपदेश ये हैं:—

(१) जिन लोगों के हृदय में किसी प्रकार की अशान्ति न हो, वे ही पूरे धार्म्मिक हैं।

(२) मनुष्य का सबसे पहला लक्ष्य विश्वास और दृढ़ता पर होना चाहिए।

(३) इस बात का दुःख न करना चाहिए कि लोग हमें नहीं जानते, बल्कि दुःख इस बात का होना चाहिए कि हमने ही लोगों को नहीं जाना।

(४) बिना मनोयोग के विद्याध्ययन के लिए परिश्रम करना बिलकुल व्यर्थ है; इसी प्रकार बिना विद्या के मनोयोग भी व्यर्थ है।

(५) ज्ञानियों की बातें छोटी और व्यवहार बड़े होते हैं।

(६) ईश्वर को सदा सम्मुख उपस्थित समझकर उसकी आराधना करनी चाहिए। यदि आराधना में मन न लगे तो उसे तुरन्त छोड़ देना चाहिए।

(७) धर्म्मभ्रष्ट होने पर जो धन और भाव मिलता है वह नीरस और व्यर्थ होता है।

(८) ज्ञानी जो कुछ ढूँढते हैं वह अपने आपमें और अज्ञानी दूसरों में ढूँढते हैं।

(९) जो उत्तम बात सीखो उसके अनुसार कार्य्य करो। प्रति दिन कोई न कोई नई बात सीखो।

(१०) मनुष्य बलपूर्वक किसी सत्कार्य्य में लगाया जा सकता है, लेकिन बलपूर्वक उससे हटाया नहीं जा सकता।

(११) जो व्यक्ति ईश्वर का अपराधी है, उसे कहीं शरण नहीं मिल सकती।

(१२) जो राजा धार्म्मिक होता है, वही न्याय और युक्तिपूर्ण कार्य्य और साहस से बातें कर सकता

है। जो धार्म्मिक नहीं होता वह केवल सतर्क और सावधान होकर ही बातें कर सकता है।

चाहे कनफ़ूची में कितने ही दोष क्यों न हों, पर इसमें सन्देह नहीं कि वे एक आदर्श व्यक्ति थे। उनके उपदेशों और आज्ञाओं का पालन चीन में आज तक होता आ रहा है। इस समय प्रत्येक ग्राम, बल्कि प्रत्येक घर में उनकी मूर्त्ति और मन्दिर वर्त्तमान हैं। सम्राट और उनके मन्त्री तक उनकी मूर्त्ति का पूजन करते हैं। और उसके सामने फल, फूल, सुगन्धि-द्रव्य तथा अन्य उत्तमोत्तम पदार्थ रखते हैं।

कनफ़ूची ने भूत, भविष्य पर-काल, सृष्टि-तत्त्व, वस्तु-तत्त्व आदि विषयों की मीमांसा करने की कभी चेष्टा नहीं की। उन्होंने सदा वर्त्तमान और इहजीवन की उन्नति और अवनति पर ही विचार किया था। उन्हीं के उपदेश से चीनवासी भी अब तक वर्त्तमान की उपासना में ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

—:o:—

रामायण और भारत का समय।

[ले०—पंडित बालकृष्णभट्ट]

वैदिक ऋषि निरामिष और सीधे थे पर रामायण और भारत के समय के भाँति भाँति के यज्ञों से पता लगता है कि लोगों में मांस का भरपूर प्रचार हो गया था। छान्दोग्य उपनिषद में यज्ञों का बड़ा विधान लिखा है। जो पशु यज्ञ के बलि में प्रधान रहता था उसी के नाम से यज्ञ का नाम पड़ता था। लोग सोमपान के बड़े रसिक होते थे। बहुत से गुण सोमपान के लिखे हैं। समस्त वेद वेदांग में जो पारंगत हो जाता था उसे स्नातक कहते थे। १२ वर्ष ब्रह्मचारी रह गुरुकुल में नियमपूर्वक विद्याभ्यास कर गुरु से विदा हो जब स्नातक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था उस समय उसका बड़ा स्वागत किया जाता था, उसके लिये बड़ा उत्सव मनाया जाता था। बिना स्नातक हुये विवाह नहीं होता था। विवाह की कई एक रसमों में बर को पहिले मधुपर्क दिया जाता है। "गौर्गौर्मातादित्यानां दुहिलवसूनाम्" ऐसे ऐसे दो एक मंत्र उस समय पढ़े जाते हैं और खर के एक टुकड़े को दूसरे टुकड़े से तोड़ दोनों टुकड़ों को फेंक देते हैं। कन्यादान करने वाला तीन बार "मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम्" कह बर को देता है। वर "प्रतिगृह्णामि" कह उसे ले लेता है और ओठ में उसे छुला पात्र पृथ्वी पर रख देता है। बाल्य विवाह की कुरीति चल जाने पर अब यह सब निरा फार्स या नाटक का एक तमाशा सा हो गया है। स्नातक का नाम कोई नहीं जानता तब गुरुकुल का विद्याभ्यास कहाँ रहा।

वैदिक समय से हर एक बात में उन्नति करते करते वाल्मीकि के समय समाज परम उन्नति की सीमा तक पहुँच गया था। बड़े राजाओं की राजधानी तथा राजसभा विद्या और विज्ञान की सिद्धपीठ थी। दूसरे देश के विद्वान् राजसभा में बुलाकर रक्खे जाते थे और उनका यथावत् आदर सत्कार किया जाता था। विदेह राजा जनक की सभा विद्वानों का समूह थी। दूर दूर के विद्वान् विदेह की सभा में आकर अपने अनेक प्रश्नों का उत्तर पा सन्तुष्ट हो जाते थे। न केवल ऐहिक बातों का विचार होता था किन्तु पारलौकिक बातों का विचार भी वहाँ होता था जैसे प्राण-विसर्जन के उपरान्त मनुष्य की क्या दशा होती है? आत्मा क्या है? देह से अलग हो जाने पर आत्मा का क्या होता है? किस दशा में रहती है इत्यादि। ऐसे ही राजा दशरथ की सभा में भी वसिष्ठ वामदेव जावालि आदि बड़े बड़े विद्वान् सदा राजसभा को सुशोभित किये रहते थे। राजा लोग बिना इन विद्वानों की सलाह के अपने मन से कोई काम नहीं कर गुज़रते थे। प्रत्येक राजा की राजसभा में विद्वान् ब्राह्मणों की एक परिषद रहती थी और वही प्रजा के हर तरह के झगड़े तै

करती थी। कृषि करनेवालों के सुख और आराम का विशेष ध्यान रहता था। राजा लोग प्रजा से उपज का छठा हिस्सा लेते थे। खेती करनेवाले ब्राह्मण छठा भाग छोड़ खेती काट लाते थे। राज-कर्मचारी उस राजभाग वा षष्ठांश का सब प्रबन्ध करते थे। विद्वान् ब्राह्मण राजसभा में रह राज्य में विद्यावृद्धि के अनेक उपाय सोचते थे। किसी बड़े यज्ञ या उत्सव में दूर देश देश, शहर तथा गाँव के रहने वाले विद्वान् पण्डित आते थे और अनेक जुदे जुदे विषयों पर वाद विवाद करते थे। उनके वाद विवाद का निष्कर्ष छः दर्शनों की बुनियाद हुई। केवल राजाओं ही के दरबार में ऐसा हो सो नहीं विद्यावृद्धि के लिये ब्राह्मणों के परिषद रहते थे। श्वेतकेतु पांचाल के परिषद में विद्या पढ़ने गया था। परिषदों में कम से कम २१ ब्राह्मण रहते थे जो दर्शन, पुराण और धर्मशास्त्र के पूर्ण ज्ञाता होते थे। पराशर ने लिखा है कि २१ न मिलें तो ३ या ४ ब्राह्मणों के भी परिषद बन सकते हैं जो षडंग वेद को अच्छी तरह पढ़े हों और अग्निहोत्र करते हों। इन परिषदों के अतिरिक्त बहुत सी अलग अलग ऐसी पाठशालाएँ होती थीं जिनमें द्विजाति मात्र के लड़के पढ़ते थे और गुरु की सेवा को अपना मुख्य काम मानते थे। १२ वर्ष तक गुरुकुल में रह विद्याभ्यास के उपरान्त गुरु को दक्षिणा दे विदा हो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। १० हज़ार विद्यार्थियों को जो पढ़ाता था उसे कुलपति की पदवी दी जाती थी। गृहस्थाश्रम के उपरान्त तीसरा आश्रम वानप्रस्थ का रक्खा गया है। किसी वन में कहीं एकान्तस्थान में बहुधा नदी के तट पर जहाँ का जल वायु अति स्वच्छ हो वहाँ जा बसते थे। कन्द मूल खाते थे और विद्यार्थियों को एकत्र कर उन्हें विद्यादान देते थे। पूर्ण विद्वान् के लिये यहाँ तक लिख दिया गया है कि वह अन्त में ब्रह्म में मिल जाता है, जिससे सिद्ध है कि पुरानी या नई किसी सभ्य जाति में कदाचित् विद्या की ऐसी उन्नति सहस्रों वर्ष तक नहीं रही जैसी हिन्दुओं में वैदिक समय में थी। जाति पाँति बिलकुल न थी सब लोग एक जाति के थे और हंस कहलाते थे। जाति पाँति का विभाग रामायण और भारत के समय अच्छी तरह स्थिर हो गया। जो जिस पेशे का था वह उसी से न्यायपूर्वक अपनी जीविका करता था, लोगों में मत्सर और डाह का कहीं लेश न था। सच बोलना सच्चा बर्ताव प्रजा मात्र में सब ठौर प्रचलित था। माता, पिता, गुरु, आचार्य्य की सेवा सुश्रूषा सब लोग अपना कर्तव्य समझते थे। "मातृ देवोभव" "पितृदेवो भव" इत्यादि उपदेश उपनिषदों में ठौर ठौर दिये गये हैं। सबके ऊपर उस समय मातृ भूमि का प्रेम एक एक मनुष्य में व्याप्त था। "इभेदवा असपन्थम्"। "आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चसी जायताम्" इत्यादि कई ऋचायें हैं जिनमें देश-प्रेम जल में हूँची सा उतरा रहा है। परमेश्वर से यज्ञ के अन्त में ऋत्विज लोग प्रार्थना करते हैं। ब्राह्मण हमारे यहाँ के ब्रह्म वर्चसी, क्षात्र धर्मनिपुण शूरवीर और बाण-विद्या में प्रवीण महारथी, शत्रु को अत्यन्त व्यथा पहुँचाने वाले हों, गायें ये बहुत दूध देने वाली हों। बैल बड़ा बोझा ढोनेवाले घोड़े बड़े वेगगामी हों। देश में स्त्रियाँ सदा अति पुत्रवती रहें। क्षत्री विजयी और रथ पर चढ़ने वाले शत्रु को जीतते रहें। हमारे इस यजमान के वीर पुत्र पैदा हो। मेघ समय समय पर पानी बरसें अकाल वृष्टि न हो। ओषधि, अन्न आदि बहुत फलें और पुष्टि वर्द्धक हों। देश में योग क्षेम अर्थात् जो अपने को अप्राप्त है उसके पाने का यत्न और जो प्राप्त है उसकी पूरी रखवारी रहे।

ऐसा ही यजुर्वेद में "आशुशिशानो" १७ ऋचाओं का एक अध्याय है जिस में ईश्वर से शत्रु पर विजय की प्रार्थना है, बाण या बरछी आदि शस्त्रों के चलाने के बड़े उत्तेजक मंत्र हैं, जिरहबख़्तर आदि पहिनने का कई प्रकार और मंत्र है उदाहरण के लिये दो एक यहाँ पर हम लिखते हैं–"उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वानां मामकानां मनांसि" इन्द्र से प्रार्थना करता है "हे मघवन्! हमारे आयुधों को घोड़े, हाथी आदि सेना में समवेत जानवरों को तथा हमारे

योद्धाओं को उत्कर्षित करो अर्थात् इनका उत्साह बढ़ाते रहो—

> अवसृष्टा हरापतं शरव्ये ब्रह्मशंसिते ।
> नच्छामित्रा अपद्यस्यमामीषां कंचनेच्छिषः ॥

हे सखे ! तू वैदिक मंत्रों से तीखी और आढ़ीदार कर दी गई है शत्रुओं पर जा गिर । उनमें से एक को भी न बचा रखना इत्यादि । इससे सिद्ध है कि कहां तक अपनी मातृभूमि को स्वाधीन रखने का उनको ध्यान था, प्रत्येक मनुष्य स्वाधीनता के बड़ा प्रेमी था अब के समान मुसलमान शासन में बहुत दिन तक रह स्वात्माभिमान और आत्मगौरव सर्वथा मनु ने स्पष्ट लिखा है "सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्" प्रजा के शासन या हुकूमत करने का एक एक छोटे राजा को उत्साह था। चाहे वे एक ही दो ग्राम के स्वच्छन्द अधिकारी क्यों न हों । पाण्डवों ने कौरवों से सन्धि करने के वादे पर ५ ही गाँव माँगे और कृष्णचन्द्र बिचवाई थे । पर दुर्योधन ने उसे भी स्वीकार न किया । उसे मालूम था कि पाण्डव बड़े प्रबल और शासन में प्रवीण हैं सब का सब निगल बैठेंगे, युधिष्ठिर ने जिसे सम्राज बनाने का उत्साह था कहा है—"गृहेरहिराजानः स्वस्थिरप्रियंकरऽसत्स्व सम्राजमासास्ते सम्राट् शब्दौहि कृच्छ्रभाक् अपने मन के माफिक शासन तथा अपना जिस में भला है ऐसे राजा तो घर घर में हैं । सम्राट् हो एकछत्रा पृथ्वी का शासन अति कठिन है, सम्राट् छोटे छोटे राजाओं को जीतने पर उन्हें सर्वथा नहीं निगल बैठता था वरन् उनसे एक बार कुछ कर की भाँति लेकर उन्हें अपने राज्य में फिर बहाल कर देता था, राजा जो युद्ध में मारा जाता था तो उसके पुत्र को उसके स्थान पर राजा कर देते थे, जरासन्ध के मारने पर उसके पुत्र सहदेव को कृष्ण ने राजतिलक किया था, यही कारण है कि राजधानी हस्तिनापुर के पास ही काशी कोशल विदेह चेदी सूरसेन पंचाल मत्स्य वृष्णि-भोज मालवा मद्र केकय गान्धार सिन्धु सौवीर कम्बोज कुशीनर आनर्त आदि बहुत से छोटे बड़े राज्य थे और सब के सब अपने अपने राज्य में स्वच्छन्द शासन करते थे, इस में सन्देह नहीं रामायण के समय से भारत का समय बड़ी उन्नति का था और जुदे जुदे राजाओं में अपना अपना बाहुबल था, वे अटूट संपत्ति के अभिमान में चूर थे, महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डव में किसी एक का पक्ष ले कट मरे ।

राजा लोग बहुधा अपने मन से कोई काम नहीं कर डालते थे । किसी नई बात को राज्य में चलाने के लिये परिषद् इकट्ठा करते थे और राजधानी में माननीय प्रतिष्ठित ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य की एक बड़ी सभा कर उनसे सलाह लेते थे, दशरथ ने जब रामचन्द्र को युवराज करना चाहा तो वशिष्ठ, जाबालि आदि ऋषियों को और अयोध्या के महत्तरजन को एकत्र कर उनसे पूछा था । इस से सिद्ध है कि शासन में प्रजा की भी सम्मति ली जाती थी, दशरथ की मौत और रामचन्द्र के वनवास पर फिर लोग इकट्ठे किये गये कि अब क्या करना उचित है ।

कभी कभी अपने मन से लोग राजा चुनते थे वेणु जो बड़ा अन्यायी था उसे ऋषियों ने शाप दे मार डाला और दस्युगण जब उपद्रव करने लगे तब पृथक् लोगों ने राजा चुना तो सिद्ध हुआ कि राज-काज में प्रजा को पूरा अधिकार था । हम समझते हैं महाभारत का युद्ध न हुआ होता तो हिन्दुस्तान समस्त संसार का एकाधिपत्य रखता और सभ्यता की अन्तिम सीमा को पहुँच जाता ।

—:o:—

विवाह का इतिहास ।

(ले० बाबू जगन्मोहन वर्म्मा)

संसार में जीव दो प्रकार के मिलते हैं एक वे जो अंडे से उत्पन्न होते हैं दूसरे वे जो सदेह माता के पेट से निकलते हैं । पहिले को अंडज और दूसरे को जरायुज वा पिंडज कहते हैं । अंडा एक प्रकार का अपूर्ण गर्भ कहा जा सकता है जिसमें बच्चे की प्रकृति रहती है और जो कुछ काल तक

स्वाभाविक वा कृत्रिम उष्णता पाकर जन्तु की आकृति में परिणत हो जाती है। इन के प्रधान दो भेद होते हैं। किसी किसी जन्तु के अंडे तो स्वाभाविक सूर्य्य ऋतु आदि के कारण परिपक्व हो जाते हैं, और फिर उनमें से बच्चे स्वयं वा माता के तोड़ने से बाहर निकल आते हैं। ऐसे जंतुओं के भरण पोषण का भार उनकी माता पर कम रहता है। दूसरे वे जिनके अंडों को माता पिता कृत्रिम उष्णता पहुँचा कर उनमें से बच्चे निकालते हैं। इस प्रकार के जन्तुओं के भरण पोषण का भार प्रायः उनके माता पिता के सिर रहता है। जरायुजों की जरा वा आँवल भी एक प्रकार का अंडा ही है पर इसमें और अंडे में भेद इतना ही है कि इसके भीतर परिपक्व बच्चा और अंडे के भीतर बच्चों की प्रकृति होती है। जीवतत्त्व-वेत्ताओं का मत है कि आँवला अंडे ही का एक अवान्तर रूप है। इस प्रकार के जन्तुओं के भरण पोषण का भार उनके पिता पर नहीं होता, माता पर होता है।

संसार में जीवों की पर्य्यालोचना करने से इस बात का अनुमान होता है कि सिवाय उन जन्तुओं के जिन की माताओं को अपने बच्चों के भरण पोषण के लिए किसी दूसरे की सहायता की आवश्यकता पड़ती है और जन्तु दम्पति वा जोड़े के रूप में नहीं रहते। ऐसे जन्तुओं में स्त्रियों के कोई निश्चित पति नहीं होते किन्तु ऋतुकाल में कितने ही पुरुष उनसे समागम करने के लिए परस्पर लड़ते भिड़ते हैं और स्त्रियाँ भी स्वेच्छानुसार किसी को थोड़ी देर के लिए ग्रहण कर लेती हैं और फिर दोनों अपनी राह लेते हैं। फिर स्त्री काल पाकर बच्चे वा अंडे देती है। ऐसे जन्तुओं में स्त्री और पुरुष में विशेष प्रेम नहीं होता और जाति में दोनों का समान अधिकार होता है। समस्त पशु कीट पतंगादि, केवल कुछ पक्षियों को छोड़, इसी कोटि के अन्तर्गत हैं। ऐसे जन्तुओं को अदाम्पत्यक कहते हैं। दूसरे वे जन्तु हैं जिनमें स्त्री और पुरुष परस्पर प्रेम पूर्वक रहते हैं। स्त्री अंडे देती है और दोनों पति पत्नी उसे बारी बारी से सेते हैं। बच्चे निकलने पर वे दोनों केवल उनके बड़े होने तक उनका भरण पोषण करते हैं। ऐसे जन्तुओं में पति की सहायता बिना स्त्री अपने बच्चों का पालन पोषण करने में असमर्थ होती है। कबूतर, मैना पंडुक आदि पक्षी इसी कोटि के जन्तु हैं। इन्हें दाम्पत्यक कहते हैं।

दाम्पत्यक और अदाम्पत्यक जन्तुओं के भी बच्चों की संख्या के विचार से कई भेद हैं। एकवत्सक, द्विवत्सक और बहुवत्सक। द्विवत्सक और बहुवत्सक यद्यपि अंडज और पिंडज दोनों में मिलता है तथापि एकवत्सक जन्तु पिंडजों के अतिरिक्त अंडजों में नहीं मिलते। यद्यपि कभी कभी एकवत्सक जन्तुओं की भी स्त्रियाँ दो वा दो से अधिक बच्चे दे देती हैं तथापि ऐसा बहुत कम हुआ करता है। एकवत्सक जन्तु गाय, भैंस, बंदर मनुष्य आदि हैं। इनमें मातायें अपने बच्चों का भरण पोषण बिना पति की सहायता के करती हैं।

इससे प्रकट हुआ कि मनुष्य भी अदाम्पत्यक और एकवत्सक जन्तुओं की कोटि के अंतर्गत है और उसकी स्त्री पति की सहायता के बिना शिशु पालन कर सकती है। यह अनुमान की बात नहीं किन्तु प्रत्यक्ष की बात है कि कितनी विधवाएँ अपने बच्चों को पति के मर जाने पर तथा सहस्रों वेश्याएँ अपनी संतति को (जिनके पिताओं का उसी तरह पता नहीं चल सकता जैसे कि गाय के बच्चे वा कुत्ते के बच्चे के पिता का) पति की सहायता के बिना ही पालती पोसती हैं। इन सब बातों पर विचार करते हुए यह कहने का साहस होता है कि बहुत पूर्वकाल में मनुष्यों में दाम्पतिक प्रथा नहीं थी।

मनुष्य की साम्प्रतिक सभ्यता उसे विवेकपूर्वक ग्रहण और त्याग-शक्ति द्वारा प्राप्त हुई है। यह सभ्यता किसी ऐसी भूमि से चली है जिसमें मनुष्य अपने सवर्गीय जन्तु बंदर आदि के समान ही था। पीछे अपने विवेक से उस भूमि से उन्नति करता

हुआ इस भूमि पर पहुँचा है जिस पर आज हम उसे देखते हैं।

मनुष्य जब अपनी आदि भूमि पर था तब उसमें स्त्री-संवरण की प्रथा वही थी जो अन्य अदाम्पतिक पशु पक्षियों में अब तक पाई जाती है। अर्थात् वह जोड़े या दम्पती के रूप में नहीं रहता था। केवल काम के वेग में वह स्त्रियों से समागम करता था जिसके पीछे उसका उस स्त्री से कोई संबन्ध नहीं रह जाता था। वह कामान्धता की दशा में माता भगिनी पुत्री आदि का विचार नहीं करता था और न स्त्रियाँ ही पिता पुत्र भाई आदि से समागम करने में हिचकती थीं। ऐसी दशा में कभी कभी पुरुष स्त्रियों पर आक्रमण भी करते थे उन्हें नोचते और दाँतों से काटते भी थे अर्थात् जिस प्रकार होता था अपनी पाशव वासना तृप्त करते थे। स्त्रियाँ भी अपने बचाव के लिये कभी कभी उन पर प्रहार भी करती थीं।

यह प्रथा अब तक कितनी ही वन्य और असभ्य जातियों में पाई जाती है। चिपेवायन (Chippewayan) बुशमैन (Bushman) एसकिमाक्स (Esquimaux) अलेउट (Aleut) आदि असभ्य जातियों में अब तक दाम्पत्य धर्म का अभाव है। चिपेवायन जाति में स्त्री के लिये कुत्तों की तरह लड़ाई होती है, जो सबको मार गिराता है वह उसके साथ समागम करता है। बुशमैन लोगों में यह बात देखी जाती है कि सभी पुरुष परस्पर अनुमति करके संभोग करते हैं। फिर यदि उसी बीच कोई दूसरा पहुँचा तो वह बलपूर्व उसे छीन लेता है। एसकिमाक्सों में पशुवत् बर्ताव है। आज एक स्त्री एक के पास है तो कल दूसरे के पास और परसों तीसरे के पास। यही अवस्था अलेउटों की भी है। किसी किसी जाति में बहुत सी स्त्रियों में एक पति हथनियों के झुंड में एक हाथी की तरह रहता है। टूपिस आदि में यह प्रथा अब तक मिलती है। चेपेवायन, कादियाक (Kadiak) आदि जातियों में अपनी माता भगिनी और कन्या से संभोग करने की प्रथा है।

अभ्यास अवस्था में यही प्रथा प्राचीन आर्यों में थी, महाभारत में स्पष्ट खोल कर कहा गया है:—

> पुराणमृषिभिर्दृष्टं पुरा धर्म्मविर्महात्मभिः।
> अनावृताः किल पुरा स्त्रिय आसन् वरानने॥
> कामाचारविहारिण्या अतन्त्राश्चारुहासिनी।
> तासां व्युच्चरमानानां कौमारात्सुभगे पतीन्॥
> नाधर्मोभूद्वरारोहे सहि धर्मः सनातनः। आदि १२३ अ०

अर्थात् "प्राचीन काल में स्त्रियाँ नंगी रहती थीं वे स्वतन्त्र और कामाचार-विहारिणी होती थीं और बिना व्याह ही अनेक पुरुषों से समागम करती थीं। उनका यह कृत्य उस समय अधर्म नहीं माना जाता था" वेदों में भी देखते हैं तो हमें इस वाक्य की पुष्टि मिलती है। ऋग्वेद में एक स्त्री का वाक्य इस प्रकार है:—

> उपोपमे परामृष मामेदभ्राणि मन्यथ।
> सर्वाहमस्मि लोमशा गांधारीणामिवाविका॥

आवो आवो मेरे साथ परामर्श करो मुझमें कोई न्यूनता न समझो मैं गांधार की भेड़ की तरह सब बालों से ढकी हूँ।

ऋग्वेद मंडल दश के यमयमी सूक्त तथा 'यत्र-पिता दुहितुर्गर्भमाधात्' इत्यादि वाक्यों से चाहे वे उपमा वा रूपक ही क्यों न माने जायँ कम से कम इस बात का पता तो अवश्य चलता है कि आर्य्यों की अवस्था किसी न किसी समय में ऐसी थी जिसे हम पाशव कह सकते हैं।

मनुष्यों की सभ्यता का मूल मन्त्र 'योग' है जिसके लिये वेदों में सैकड़ों जगह साहकारी क्षेम के साथ 'योगः क्षेमो न कल्पताम्' इत्यादि प्रार्थना की गई है। उपयोगी वस्तुओं को कालांतर में उपयोग में लाने के लिए संग्रह करना 'योग' कहलाता है। बरसात आदि के दुर्दिनों में जब लोगों ने देखा कि कई दिन बिना अन्न रहना पड़ता है तब उन्होंने वस्तुओं का संग्रह करना प्रारंभ किया। इसी संग्रह

के लिये उन्हें घर बनाने की आवश्यकता पड़ी और अपने गृह कार्य्य की सहायता के लिये उन्हें किसी अन्य की आवश्यकता पड़ी। ऐसे काम के लिये उन्होंने किसी स्त्री को चुनना प्रारंभ किया, स्त्रियों को भी इसमें उतना ही सुबीता था। पर कभी कभी लोग किसी स्त्री को फुसला कर बलात् उठा लाते या लड़ कर छीन भी लाते थे और वह तब तक उनके साथ रहती थी जब तक कोई दूसरा आकर उसे छीन नहीं ले जाता था। धीरे धीरे इन लोगों की सभ्यता बढ़ती गई और गृह-कार्य्य के लिये स्त्री का होना परमावश्यक माना जाने लगा। अतः यह प्रथा चली कि एक स्त्री किसी पुरुष के घर रहा करे पर स्त्री की स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। महाभारत में इस प्रकार के कितने ही उदाहरण मिल सकते हैं। दीर्घतमस ऋषि का उदाहरण इसके लिये एक अच्छा प्रमाण है जिसका हाल ऋग्वेद मंडल १ में लिखा है। उस समय आर्य्यों में वर्णधर्म स्थापित हो चला था और यही गृह-प्रबंध बढ़ते बढ़ते प्रजापतित्व तक पहुँच गया। ये लोग गौ आदि पशु पालना तथा दूध, दही, मक्खन आदि बनाना जान गये थे। कन्या को ये लोग संभुक्त स्त्री की अपेक्षा घर में लाना अच्छा जानते थे। अतः प्रायः कन्या के लिये ये लोग मार पीट भी करते थे। अथर्ववेद में इस प्रकार के झगड़ों का निबटेरा इस प्रकार लिखा है—

उत यत्पतयो दश स्त्रियाश्चेदब्राह्मणाः।
ब्रह्म चेद्धस्तमग्रभीत्स एक पितुरेकधा॥

यदि किसी स्त्री के लिये दश अब्राह्मण पुरुष पति होने के लिये विवाद करते हों और ग्यारहवाँ ब्राह्मण पति हो तो ब्राह्मण ही अकेला उसके पति होने का अधिकारी है।

(शेष आगे)

—:०:—

गोस्वामी तुलसीदास।

[ज्येष्ठ १९६९ की मर्यादा में श्रीयुत इन्द्रदेवनारायण ने हिन्दीनवरत्न पर अपने विचार प्रगट करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवनसम्बन्ध में अनेक बातें ऐसी कही हैं जो अब तक निर्धारित बातों में बहुत उलट फेर कर देती हैं। यह आशा थी कि इस लेख पर हिन्दी के विद्वानों और गोस्वामी जी के भक्तों का ध्यान जायगा और इस विषय पर विचार कर सिद्धांत स्थिर किए जाँयगे परन्तु अभी तक किसी महाशय ने इस सम्बन्ध में कहीं कुछ लिखने की कृपा नहीं की है अतएव उस लेख का वह अंश जो गोस्वामी जी की जीवन-घटनाओं से संबन्ध रखता है पुनः नीचे प्रकाशित किया जाता है और यह आशा की जाती है कि इन में दी हुई बातों पर विशेष रूप से विचार किया जायगा।

सम्पादक।]

गोस्वामी तुलसीदास जी।

गोस्वामी जी रचित अलौकिक ग्रन्थों में अनेकानेक विषय समन्वित हैं। प्रथम "रामचरितमानस" ही को देखिये, इसमें कैसे कैसे गूढ़ विषय सन्निवेशित हैं। ग्रन्थकार का वचन है—

श्लोक।

नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्-
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा,
भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति।

चौपाई।

रघुपति "महिमा अगुन" अबाधा।
बरनब सोई बर बारि अगाधा॥
"राम सीय जस" सलिल सुधा सम।
"उपमा" बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइन सघन चारु "चौपाई"।
जुगुति मंजु मति सीप सुहाई॥

"छन्द" 'सोरठा' सुन्दर दोहा।
सोई बहु रङ्ग कमल कुल सोहा॥
'अरथ' अनूप सुभाव 'सुभासा'।
सोइ पराग मकरन्द सुवासा॥
सुकृत पुञ्ज मंजुल अलि माला।
'ज्ञान विराग विचार मराला॥
धुनि 'अवरेव' 'कवित' 'गुन' 'जाती'।
मीन मनोहर ते बहु भाँती॥
'अरथ' 'धरम' 'कामादिक' चारी।
कहब 'ज्ञान' 'विज्ञान' विचारी॥
'नवरस' 'जप' 'तप' 'जोग' 'विरागा'।
ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
सुकृती साधु नाम 'गुन गाना'।
ते विचित्र जल विहँग समाना॥
संत सभा चहुँ दिसि अँवराई।
सरधा रितु बसन्त सम गाई॥
'भगति निरूपन' विविध विधाना।
'छमा' 'दया' 'दम' लता बिताना॥
'सम' 'जम' 'नियम' फूल फल ज्ञाना।
हरि पद रति रस वेद बषाना॥

पुनः

चौपाई।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बषानी।
जेहि विज्ञान मगन मुनि ज्ञानी॥
'भगति' 'ज्ञान' 'विज्ञान' विरागा।
पुनि सब बरनहु सहित विभागा॥
औरो राम रहस्य अनेका।
कहहु नाथ अति विमल विवेका॥
जो प्रभु मैं पूछा नहि होई।
सोउ दयाल राषहु जनि गोई॥

ग्रन्थकार-रचित मानस की आरती में लिखा है—

चारों वेद पुरान अष्ट दश,
षट् सास्त्र सद्ग्रन्थन्ह को रस।
मुनिजन धन सन्तन को सर्वस,
सार अंस संमत सबही की।

सारांश यह कि रामचरितमानस नाना पुराण, वेद, शास्त्र और रामायणादि-कथित सिद्धान्त और विषयों से विभूषित हैं तथा अन्यत्र से भी इसमें अनेकानेक विषय सन्निवेशित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त इसमें निम्नलिखित विषय विशेषतर कथित हैं—

साहित्य—भाषा, छन्द, अर्थ, उपमा, धुनि, अव रेव, काव्यगुण, जाति, नवरस, युक्ति, अलंकार, भावादिक।

दर्शन—ज्ञान, विज्ञान, तत्त्वविचार, भक्ति, कर्म, योग इत्यादि।

चतुर्वर्ग—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष।

चरित—सगुण, निर्गुण, लौकिक, अलौकिक।

पुनः उपर्युक्त वचनों के अनुसार यह रामचरितमानस चारों वेद, छओं शास्त्र, अठारहों पुराण तथा अनेकानेक सद्ग्रन्थों का सारतत्त्व है। इसी कारण यह मुनिजनों का धन और सन्तों का सर्वस्व है। इसके अतिरिक्त इसमें राजनीति, साधारण नीति, देशभक्ति, पितृभक्ति, मातृभक्ति, भ्रातृभक्ति, पति-भक्ति, चरित्र-कथन इत्यादिक अनेकानेक विषय विभूषित हैं। श्रीगोस्वामीजी रचित अधिकांश ग्रन्थों में ये विषय व्यास समास रीति से आवश्यकतानुसार कथित हैं। अब आगे चलकर देखिये इन विषयों की समालोचना कहाँ तक यथेष्ट अनुसन्धान-पूर्वक मिश्र महाशयों ने की है और कहाँ तक इस अलौकिक ग्रन्थ की अलौकिकता प्रतिपादन की है। आरम्भ में मिश्र महाशयों द्वारा लिखित गोस्वामीजी के जीवनचरित की ओर ध्यान दीजिये। इस विषय में डाकृर ग्रियर्सन ने जो कुछ अपने "नोटस् औन तुलसीदास" नामक अँगरेज़ी निबन्ध में लिखा है उसी को नागरीप्रचारिणी सभा के महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी प्रभृति पाँच सदस्यों द्वारा सम्पादित रामचरितमानस की भूमिका में दोहराया गया है और उसी आधार पर मिश्र महाशयों ने भी संक्षिप्त जीवनी इस निबन्ध में लिखी है। इस विषय

में अनुसन्धान करने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया है। आप लोग कहते हैं कि गोस्वामीजी का जन्म संवत् १५८९ में हुआ था (पृष्ठ २) परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। डाकृर ग्रियर्सन ने लिखा है—

"The most trustworthy account states that he was born in Samvat 1589 (A. D. 1532) so that he must have been 42 years of age when he commenced writing the Ramayana.

तात्पर्य्य यह है कि अत्यन्त विश्वसनीय कथाओं से ज्ञात होता है कि उन्होंने (गोस्वामीजी ने) संवत् १५८९ में जन्म लिया था इससे वह ४२ वर्ष के रहे होंगे जब उन्होंने रामायण लिखना आरम्भ किया परन्तु किस आधार पर यह संवत् निश्चय हुआ सो कुछ नहीं लिखा। पण्डित रामगुलाम द्विवेदी की सुनी सुनाई कहावतों से संवत् १५८९ है जिसे डाकृर ग्रियर्सन ने भी लिखा है......................इसलिए जन्म संवत् १५८९ प्रायः ठीक जान पड़ता है"। इन्हीं कही सुनी कहावतों के अनुसार मिश्र महाशयों ने भी वही संवत् लिख मारा, वास्तविक बात का ज़रा भी अनुसन्धान नहीं किया।

श्रीगोस्वामीजी की शिष्य परम्परा के चैाथे पुश्त में काशीनिवासी विद्वद्वर श्रीशिवलाल पाठकजी हुए, जिन्होंने वाल्मीकीय रामायण पर संस्कृत-भाष्य तथा व्याकरणादि विषय पर भी अनेक ग्रन्थ निर्माण किये हैं। उन्होंने रामचरितमानस पर भी "मानस-मयंक" नामक तिलक रचा है। उसमें लिखा हैः—

दोहा।

मन ऊपर शर जानिये, शर पर दीन्हें पंक।
तुलसी प्रगटे रामवत, राम जन्म की टेक॥

सुने गुरू ते बीच शर, सन्त बीच मन जान।
प्रगटे सतहत्तर परे, ताते कहे चिरान॥

अर्थात् १५५४ सं० में गोस्वामीजी प्रगट हुए और पाँच वर्ष की अवस्था में गुरु से कथा सुनी। पुनः चालिस वर्ष की अवस्था में सन्तों से भी वही कथा सुनी और उन्होंने सतहत्तरवें वर्ष के बाद अठहत्तरवें वर्ष में रामचरितमानस की रचना आरम्भ किया। उनकी अठहत्तर वर्ष की अवस्था १६३१ संवत् में थी और १६८० संवत् में परमधाम सिधारे। एवं प्रकार १५५४ में ७७ जोड़ने से १६३१ संवत् हुआ। संवत् १५५४ वाँ साल मिला कर अठहत्तर वर्ष की अवस्था गोस्वामीजी की थी जब मानस आरम्भ हुआ और १२७ वर्ष की दीर्घ आयु भोग कर गोस्वामीजी परमधाम सिधारे।

मिश्र महाशयों ने जो यह अनुमान किया है कि दस–बारह वर्ष की अवस्था में गोस्वामीजी ने राम-कथा गुरु से सुनी होगी सो सर्वथा अमूलक और अमाननीय है क्योंकि स्वयं ग्रन्थकार कहते हैंः—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समुझि नहीं तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

दस-बारह वर्ष की अवस्था अचेत नहीं कहलाती, इस अवस्था में सर्व प्रकार सचेतत्व बना रहता है सो अचेत की कौन कहे मूल में तो अति अचेत लिखा है, अतः १०, १२ वर्ष की अवस्था कदापि माननीय नहीं।

मिश्र महाशय कहते हैं कि "इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे और माता का नाम हुलसी था। स्वयं इनका नाम रामबोला था परन्तु वैरागी होने पर इनका नाम तुलसीदास हुआ। दूसरी आपत्ति में मुझको यह कहना है कि आप लोगों ने कैसे जाना कि गोस्वामी जी का विवाह पाठकों के यहाँ हुआ था? यह आपत्ति तो जान बूझ कर बुलाई गई है;

गोस्वामी जी का जीवन-चरित उनके शिष्य महानुभाव महात्मा रघुबरदास जी ने लिखा है। इस ग्रन्थ का नाम "तुलसीचरित" है। यह बड़ा ही बृहद् ग्रन्थ है। इसके मुख्य चार खण्ड हैं (१) अवध, (२) काशी, (३) नर्मदा और (४) मथुरा। इनमें भी अनेक

उपखण्ड हैं। इस ग्रन्थ की संख्या इस प्रकार लिखी हुई है "चौ० एक लाख तैंतीस हज़ार, नौसै बासठ छन्द उदारा" यह ग्रन्थ महाभारत से कम नहीं है। इसमें गोस्वामी जी के जीवनचरित विषयक मुख्य मुख्य वृत्तान्त नित्य प्रति के लिखे हुए हैं। इसकी कविता अत्यन्त मधुर सरल और मनोरंजक है। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोस्वामी जी के प्रिय शिष्य महात्मा रघुबरदास जी विरचित इस आदरणीय ग्रन्थ की कविता श्रीरामचरितमानस के टक्कर की है और यह "तुलसीचरित" बड़े महत्त्व का ग्रन्थ है। इससे प्राचीन समय की सभी बातों का विशेष परिज्ञान होता है। इस माननीय बृहद् ग्रन्थ के 'अवध खण्ड' में लिखा है कि जब श्रीगोस्वामी जी घर से विरक्त होकर निकले तो रास्ते में एक रघुनाथ नामक पण्डित से भेंट हुई और गोस्वामी जी ने उनसे अपना सब वृत्तान्त कहाः—

गोस्वामीजी का वचन :—

चौपाई।

काल अतीत यमुन तीरिनी के।
रोदन करत चलेहुँ मुष फीके॥
हिय विराग तिय अपमित बचना।
कण्ठ मोद बैठो निज रचना॥
खोंचत त्याग विराग बटोही।
मोह गेह दिसि कर सत सोही॥
भिरे जुगल बल बरनि न जाही।
स्पन्दन वपु खेत बन माही॥
तिनिहुँ दिशा अपथ महि काटी।
आठ कोस मिस्सिरन की पाटी॥
पहुँचि ग्राम तट सुतरु रसाला।
बैठेहुँ देषि भूमि सुविसाला॥
पण्डित एक नाम रघुनाथा।
सकल शास्त्र पाठी गुण गाथा॥
पूजा करत डरत मैं जाई।
दण्ड प्रनाम कीन्ह सकुचाई॥
सो मोहि कर चेष्टा सनमाना।
बैठि गयऊँ महितल भय माना॥
बुध पूजा करि मोहि बुलावा।
गृह वृत्तान्त पूछब मन भावा॥

☼ ☼ ☼ ☼

जुवा गौर शुचि गढ़नि विचारी।
जनु विधि निज कर आपु सँवारी॥
तुम विसाक आतुर गति धारी।
धर्मशील नहि चित्त विकारी॥
देखत तुम्हहिँ दुरि लगि प्रानी।
अद्भुत सकल परस्पर मानी॥
तात मात तिय भ्रात तुम्हारे।
किमि न तात तुम्ह प्रान पियारे॥
कुटुम परोस मित्र कोउ नाही।
किधौं मूढ़ पुर वास सदाही॥
सन्यपात पकरे सब ग्रामा।
चले भागि तुम तजि वह ठामा॥
तव यात्रा विदेश कर जानी।
विदरि हृदय किमि मरे अयानी॥
चित्त वृति तुव दुष मह ताता।
सुनत न जगत व्यक्त सब बाता॥
मोते अधिक कहत सब लोगा।
अजहुँ जुरे देखत तरु योगा॥
कहाँ तात ससुरारि तुम्हारी।
तुम्हहिं धाय नहि गहे अनारी॥
जाति पांति गृह ग्राम तुम्हारा।
पिता पीठि का नाम अचारा॥

दोहा।

कहहु तात दस कोस लगि, विप्रन को व्यवहार।
मैं जानत भलि भाँति सब, सत अरु असत विचार॥
चले अश्रु गद गद हृदय, सात्विक भयो महान।
भुवि नष रेष लख्यौं करन, मैं जिमि जड़ अज्ञान॥

चौपाई।

दया शील बुधवर रघुराई।
तुरत लीन्ह मोहि हृदय लगाई॥
अश्रु पोंछि बहु तोष देवाई।
बिसे बीस सुत मम समुदाई॥

लखौं चिन्ह मिश्रन सम तोरा।
विसुचि मंजु मम गोत्र किशोरा॥
जनि रोवसि प्रिय बाल मतीशा।
मेटहिं सकल दुसह दुख ईशा॥
धीरज धरि मैं कथन विचारा।
पुनि बुध कीन्ह विविध सतकारा॥
परशुराम परपिता हमारे।
राजापुर सुख भवन सुधारे॥
प्रथम तीर्थयात्रा मह आए।
चित्रकूट लखि अति सुख पाए॥
कोटि तीर्थ आदिक मुनि वासा।
फिरे सकल प्रमुदित गत आसा॥
वीर मरुतसुत आश्रम आई।
रहे रैनि तहँ अति सुख पाई॥
परशुराम सोये सुख पाई।
तहँ मारुतसुत स्वप्न देषाई॥
बसहु जाय राजापुर ग्रामा।
उत्तर भाग सुभूमि ललामा॥
तुम्हरे चैाथ पीठिका एका।
तप समूह मुनि जन्म विवेका॥
दम्पति तीरथ भ्रमे अनेका।
जानि चरित अद्‌भुत गहि टेका॥
दम्पति रहे पक्ष एक तँहवाँ।
गये कामदा शृङ्ग सु जँहवाँ॥
नाना चमतकार तिन्ह पाई।
सीतापुर नृप के ढिग आई॥
राजापुर निवास हित भाषा।
कहे चरित कुछ गुप्त न राखा॥
तरिवनपुर तेहि की नृपधानी।
मिश्र परशुरामहिं नृप आनी॥

दोहा।

अति महान विद्वान लखि, पठन शास्त्र षट जासु।
बहु सन्माने भूप तँह, कहि द्विज मूल निवासु॥
सरयू के उत्तर बसत, मंजु देश सरवार।
राज मंझवली जानिये, कसया ग्राम उदार॥
राजधानि ते जानिये, क्रोश विंश त्रय भूप।
जन्मभूमि मम ग्रैार पुनि, प्रगट्यौ बैाध स्वरूप॥

चैापाई।

बैाध स्वरूप पेंड ते भारी।
उपल रूप महि दीन बलारी॥
जैनाभास चल्यो मत भारी।
रक्षा जीव पूर्ण परिचारी॥
हेम सुकुल तेहि कुल के पण्डित।
क्षत्री धर्म सकल गुण मण्डित॥
मैं पुन गाना मिश्र कहावा।
गणपति भाग यज्ञ मंह पावा॥
मम बिनु महावंश नहि कोई।
मैं पुनि बिन सन्तान जो सोई॥
तिरसठि अब्द देह मम राजा।
तिमि सम पत्नि जानि मति भ्राजा॥
खचित स्वप्नवत लखि मरलोका।
तीरथ करन चलेहुँ तजि सोका॥
चित्रकूट प्रभु आज्ञा पावा।
प्रगट स्वप्न बहु विधि दरसावा॥
भूप मानि मैं चलेहुँ रजाई।
राजापुर निवास की ताई॥
निर्धन बसब राजपुर जाई।
वृक्ष कलिन्दि तीर सचुपाई॥
नगर गेह सुख मिलै कदापी।
बसब न होहि जहाँ परितापी॥
अति आदर करि भूप बसावा।
बाममार्ग पथ शुद्ध चलावा॥
स्वाद त्यागि शिव शक्ति उपासी।
जिनके प्रगट शम्भु गिरिवासी॥
परशुराम काशी तन त्यागे।
राम मन्त्र अति प्रिय अनुरागे॥
शम्भु कर्णगत दीन सुनाई।
चढ़ि विमान सुरधाम सिधाई॥
तिनके शङ्कर मिश्र उदारा।
लघु पण्डित प्रसिद्ध संसारा॥

दोहा।

परशुराम जू भूप को, दान भूमि नहिं लीन।
शिष्य मारवाड़ी अमित, धन गृह दीन्ह प्रवीन॥
वचन सिद्धि शङ्कर मिसिर, नृपति भूमि बहु दीन।
भूप रानि अरु राज नर, भये शिष्य मति लीन॥
शङ्कर प्रथम विवाह ते, बसु सुत करि उत्पन्न।
द्वै कन्या द्वै सुत सुबुध, निशि दिन ज्ञान प्रसन्न॥

चौपाई।

जोषित मृतक कीन अनु व्याहा।
ताते मोरि साख बुध नाहा॥
तिनके संत मिश्र द्वै भ्राता।
रुद्रनाथ एक नाम जो ख्याता॥
सोउ लघु बुध शिष्यन्ह मंह जाई।
लाय द्रव्य पुनि भूमि कमाई॥
रुद्रनाथ के सुत भे चारी।
प्रथम पुत्र को नाम मुरारी॥
सो मम पिता सुनिय बुध त्राता।
मैं पुनि चारि सहोदर भ्राता॥
ज्येष्ठ भ्रात मम गणपति नामा।
ताते लघु महेस गुण धामा॥
कर्म काण्ड पण्डित पुनि दोऊ।
अति कनिष्ठ मङ्गल कहि सोऊ॥
तुलसी तुलाराम मम नामा।
तुला अन्न धरि तैालि स्वधामा॥
तुलसिराम कुल गुरू हमारे।
जन्म पत्र मम देखि बिचारे॥
हस्त प्रास पण्डित मतिधारी।
कह्यौ बाल होइहिं व्रतधारी॥
धन विद्या तप होय महाना।
तेजरासि बालक मतिमाना॥
भरतखंड एहि सम एहि काला।
नहि महान कोउ परमति शाला॥
करिहिं खचित नृपगन गुरुबाई।
बचन सिद्ध खलु रहहिं सदाई॥
अति सुन्दर सरूप सितदेहा।
बुध मङ्गल भाग्यस्थल गेहा॥
ताते यह विदेह सम जाई।
अति महान पदवी पुनि पाई॥
पञ्चम केतु रुद्र गृह राहु।
जतन सहस्र वंश नहि लाहु॥

दोहा।

राज योग दोउ सुख सुएहि, होहि अनेक प्रकार।
अब्दै दया मुनीस कोउ, लियो जन्म बरबार॥

चौपाई।

प्रेमहि तुलसि नाम मम राखी।
तुलारोह तिय कहि अभिलाषी॥
मातु भगिनि लघु रही कुमारी।
कीन ब्याह सुन्दरी विचारी॥
चारि भ्रात द्वै भगिनि हमारे।
पिता मातु मम सहित निसारे॥
भ्रात पुत्र कन्या मिलि नाथा।
षोडस मनुज रहे एक साथा॥
❋ ❋ ❋ ❋
बानी विद्या भगिनि हमारी।
धर्म शील उत्तम गुण धारी॥
❋ ❋ ❋ ❋

दोहा।

अति उत्तम कुल भगिनि सब, व्याही अति कुशलात।
हस्त प्रास पण्डितन्ह गृह, व्याहे सब मम भ्रात॥

चौपाई।

मोर व्याह द्वै प्रथम जो भयऊ।
हस्त प्रास भार्गव गृह ठयऊ॥
भई स्वर्गवासी दोऊ नारी।
कुलगुरु तुलसि कहेउ व्रतधारी॥
तृतिय व्याह कञ्चनपुर माही।
सोइ तिय बच विदेश अवगाही॥
अहो नाथ तिन्ह कीन्ह खोटाई।
मात भ्रात परिवार छोड़ाई॥
कुल गुरु कथन भई सब सांची।
सुख धन गिरा अवर सब कांची॥
सुनहु नाथ कञ्चनपुर ग्रामा।
उपाध्याय लछिमन अस नामा॥

तिनकी सुता बुद्धिमति एका ।
धर्मशील गुनपुञ्ज विवेका ॥
कथा-पुराण-श्रवण बलभारी ।
अति कन्या सुन्दरि मति धारी ॥

दोहा ।

मोह विप्र बहु द्रव्य ले, पितु मिलि करि उत्साह ।
यदपि मातु पितु सो विमुख, भयो तृतिय मम व्याह ॥

* * * *

चौपाई ।

निज विवाह प्रथमहि करि जहवां ।
तीन सहस्र मुद्रा लिय तहवां ॥
षट् सहस्र लै मोहि विवाहे ।
उपाध्याय कुल पावन चाहे ॥

ऊपर लिखे हुए पदों का सारार्थ यह है कि सरयू नदी के उत्तरभागस्थ सरवार देश में मधौली से तेइस कोस पर कसेयां ग्राम में गोस्वामी के प्रपितामह परशुराम मिश्र का जन्म-स्थान था ग्रैार यहीं के वे निवासी थे। एक बार वह तीर्थ यात्रा के लिए घर से निकले ग्रैार भ्रमण करते हुए चित्रकूट में पहुँचे, वहाँ हनुमानजी ने स्वप्न में आदेश दिया कि तुम राजापुर में निवास करो, तुम्हारे चैाथी पीढ़ी में एक तपोनिधि मुनि का जन्म होगा। इस आदेश को पाकर के परशुराम मिश्र सीतापुर में उस प्रान्त के राजा के यहाँ गये ग्रैार हनुमानजी की आज्ञा को याथातथ्य राजा से कह कर राजापुर में निवास करने की इच्छा प्रकट की। राजा इनको अत्यन्त श्रेष्ठ विद्वान जान कर अपने साथ तीखनपुर अपनी राजधानी में ले आये ग्रैार बहुत सम्मानपूर्वक राजापुर में निवास कराया। उनके तिरसठ वर्ष की अवस्था तक कोई सन्तान नहीं हुआ इससे वह बहुत खिन्न होकर तीर्थयात्रा को गये तो पुनः चित्रकूट में स्वप्न हुआ ग्रैार राजापुर लैाट आये। उस समय राजा उनसे मिलने आया। तदनन्तर इन्होंने राजापुर में शिव-शक्ति के उपासकों की आचरण-भ्रष्टता से दुःखित हो राजापुर में रहने की अनिच्छा प्रगट की परन्तु राजा ने इनके मत का अनुयायी हो कर बड़े सम्मानपूर्वक इनको रक्खा ग्रैार भूमिदान दिया परन्तु इन्होंने ग्रहण नहीं किया। इनके शिष्य मारवाड़ी बहुत थे उन्हीं लोगों के द्वारा इनको धन, गृह ग्रैार भूमि का लाभ हुआ। अन्तकाल में काशी जाकर इन्होंने शरीर त्याग किया। ये गाना के मिश्र थे ग्रैार यज्ञ में गणेशजी का भाग पाते थे।

इनके पुत्र शङ्कर मिश्र हुए जिनको वाकसिद्धि प्राप्त थी। राजा ग्रैार रानी तथा अन्यान्य राज्यवर्ग इनके शिष्य हुए ग्रैार राजा से इन्हें बहुत भूमि मिली। इन्होंने दो विवाह किये। प्रथम से आठ पुत्र ग्रैार दो कन्याएं हुईं; दूसरे विवाह से दो पुत्र हुए (१) सन्त मिश्र, (२) रुद्रनाथमिश्र। रुद्रनाथ मिश्र के चार पुत्र हुए। सबसे बड़े मुरारी मिश्र थे। इन्हीं महाभाग्यशाली महा पुरुष के पुत्र गोस्वामीजी हुए।

गोस्वामी जी चार भाई थे (१) गणपति, (२) महेश, (३) तुलाराम, (४) मङ्गल।

यही तुलाराम तत्वाचार्यवर्य भक्तचुड़ामणि गोस्वामी जी हैं। इनके कुल गुरु तुलसीराम ने इनका नाम तुलाराम रक्खा था। गोस्वामी जी के दो बहिनें भी थीं। एक का नाम वाणी ग्रैार दूसरी का विद्या थीं।

गोस्वामी जी के तीन विवाह हुए थे प्रथम स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह हुआ ग्रैार दूसरी स्त्री के मरने पर तीसरा। यह तीसरा व्याह कञ्चनपुर के लक्ष्मण उपाध्याय की पुत्री बुद्धिमती से हुआ, इस विवाह में इनके पिता ने छः हज़ार मुद्रा लिये थे। इसी स्त्री के उपदेश से गोस्वामीजी विरक्त हुए।

अब तो यह निश्चय हुआ कि गोस्वामी जी सरवरिया ब्राह्मण गाना के मिश्र थे, इनके पिता का नाम मुरारी मिश्र था ग्रैार इनका नाम तुलाराम था ग्रैार ये अभुक्त मूल में नहीं जन्मे थे, इनके पिता माता इनके विरक्त होने के समय जीवित थे। मिश्र महाशयों का यह कथन कि ये दाने दाने को विल-

बिलाते फिरते थे बिलकुल बेबुनियाद है। न मालूम मिश्र महाशयों पर क्या तीसरी आपत्ति आई जिससे विवश होकर वे कवितावली के इस पद के सहारे ज़बरदस्ती दरिद्रता गोस्वामी जी के माथे मढ़ते हैं—

"बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हौं चारि फल चारिहुं चनक को"।

गोस्वामी जी ने गीतावली में भी कहा है—

"हुतो ललात कृस गात खात मोद पाइ, कोदो कनै"—वहाँ चने के चार दाने' चारों फल सदृश कहा, यहां कोदो के कण ही से मोद प्राप्ति कही—भला यह तो विचारिए, इन दोनों वचनों में सत्य कौन है? पारमार्थिक ऐश्वर्य की अपेक्षा संसारी ऐश्वर्य सर्वदा तुच्छ है। इसी कारण गोस्वामी जी ने संसारी ऐश्वर्य को चने का चार दाना और कोदो के कण सदृश कहा है, ये पद उनकी दरिद्रता के बोधक नहीं हैं। आप लोग कहते हैं कि गोस्वामीजी का विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से हुआ था और तारक नामक पुत्र भी हुआ था। पर वह बचपन ही में स्वर्गवासी हुआ, यह बात भी असार सिद्ध हो ही चुकी। प्रायः सभी इस सोरठा के आधार पर "बन्दौ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नररूप हरि" गोस्वामी जी को नरहरिदास जी का शिष्य कहते हैं परन्तु यह बात सत्य नहीं है गोस्वामीजी श्री रामदासजी के शिष्य थे।

देखिये, जीवनचरित में लिखा है:—

चौपाई।

तब गुरु रामदास पहचानी।
राम यज्ञ बिधि श्रुति मत ठानी॥
द्वादस दिन फलहार कराई।
दिये मौनव्रत मेरी ताईं॥
राम बीज जुत मन्त्र जपावा।
कष्ट साध्य सब नियम करावा॥
बीज मन्त्र तुलसी के याना।
लिखि त्रिकाल प्यावत हित श्वाना॥

इन्हीं श्री रामदास जी से गोस्वामी जी ने विद्या भी प्राप्त की।

चौपाई।

पुनि भारती यज्ञ मम हेता।
कियो परम गुरुदेव सचेता॥
पढ़ि मुनि पाणिनीय को ग्रंथा।
बसु अध्याय शब्द कर पंथा॥
दीक्षित ग्रन्थ समग्र विचारी।
पढ़े कृपा गुरु शेखर भारी॥
कौस्तुभादि मह भाष्य विचारा।
❊ ❊ ❊ ❊
बरष एक मह शब्दहिं जोई।
पुनि षट्शास्त्र वर्ष मह गोई॥
सकल पुरान काव्य अवलोकी।
तीन वर्ष मँह भयो विशोकी॥

—:०:—

अफ़गानिस्तान।

(ले० श्रीमती हेमंत कुमारी देवी।)

अफ़गानिस्तान—इसके उत्तर में रूस राज्य, पश्चिम में जुलफ़कर और पूर्व में लेक विक्टोरिया है। यही अफ़गानिस्तान का उत्तर सीमान्त है, पूर्व सीमान्त प्रदेश चित्राल से लगा हुआ है। दक्षिण में बिलूचिस्तान है।

अफ़गानिस्तान में कई पर्वत हैं जिनमें हिन्दूकुश, कोह बाबा और सफ़ेद कोह प्रधान हैं। आक्सस हेलमंद और काबुल नदी अफ़गानिस्तान में होकर बहती हैं। अफ़गानिस्तान में नाना प्रकार के वृक्ष होते हैं जिनमें से देवदारु, बादाम और अखरोट के पेड़ सब स्थानों में देख पड़ते हैं। झाऊ, तूत, एप्रिकाट, सेब, नाशपाती, शफ़ालू के वृक्ष भी बहुत होते हैं। व्याघ्र और चीते, हरीरुद और मुर्गाव जंगलों में मिलते हैं। व्याघ्रों की संख्या कम है परन्तु

चीते बहुत अधिक हैं। लकड़बग्घा, हैना, और सियार प्रत्येक स्थान में देख पड़ते हैं। प्रत्येक नदी में ऊदबिलाव पाये जाते हैं। कन्धार में फ़ारस का लिंकस भी देख पड़ता है। जंगली गधे भी बहुत होते हैं। धूसर वर्ण के रीछ और जंगली कुत्ते हिन्दूकुश में बहुत हैं और यहाँ काले रीछ, मारखोर, उड़ियाल आदि विचरते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान में साँपों की संख्या अधिक है। डेढ़ फ़ुट लम्बे एक प्रकार के विषविहीन नीलवर्ण साँप देख पड़ते हैं। ये चीटियाँ खाकर जीवन धारण करते हैं। रेगिस्तान में ह्वाइयर नामक एक प्रकार का विषैला सर्प होता है जिसके सींग होते हैं। उसका काटना प्राणघातक होता है। सुतरमार नामक एक प्रकार का स्लेट के रंग का सर्प होता है जिसका काटना भयानक होने पर भी उतना घातक नहीं है। गोखुरा अथवा फनारी साँप अफ़ग़ानिस्तान के उष्ण प्रदेशों में मिलता है।

अफ़ग़ानिस्तान शीत प्रधान देश है। गज़नी में सरदी के तीन महीने में ७२८० फ़ीट बर्फ़ गिरती है। उस समय निवासी अपना घर बार छोड़ दूसरी जगह चले जाते हैं। हज़ाराजात में भी ऐसी ही सरदी पड़ती है। हिरात में इससे कम सरदी होती है। ग्रीष्म ऋतु में गरमी भी अधिक होती है। गरमियों में काबुल की उष्णता ९०°। १००° और कन्धार में ११०° तक होती है।

इतिहास।

सिकंदर के युद्ध का हाल सब पर विदित है। इसके मरने पर सिल्यूकस निकेटर पूर्व प्रदेशों का राजा हुआ। इस समय काबुल अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त के अधिकार में था। इसके पीछे पार्थियन और शकों का आविर्भाव हुआ। तब यूची नामक एक जाति ने आकर यूनान और पार्थियन राज्य पर आक्रमण कर उन्हें हरा दिया। इस समय कुशन वंशी कनिष्क का राज्य पूर्व में बनारस और दक्षिण में मालवा तक फैला हुआ था। कनिष्क बौद्धधर्मावलम्बी था और उसने अनेक स्तूप बनवाये थे। कनिष्क की मृत्यु के पीछे उसका राज्य लुप्त हो गया। तब तुर्की लोगों ने काबुल पर अधिकार जमाया। चीनी यात्री हुएनशांग ने तुर्कों को बौद्धधर्मावलम्बी पाया था। तुर्कों के अनन्तर काबुल पर हिन्दू राजाओं का अधिकार हुआ। गज़नवी की लड़ाई में विजयलक्ष्मी ने हिन्दुओं का साथ छोड़ दिया।

नेहाविंद की लड़ाई में अरबों ने विजयी होने पर अशिनद लोगों का फ़ारस का राज्य नष्ट हो गया और अरबों ने अफ़ग़ानिस्तान की पश्चिमी सीमा तक दख़ल जमा लिया। फ़ारस के सफ़ारिद लोगों ने हिरात और बलख़ में राज्य स्थापित किया। फिर सामाजिक गणों का अभ्युदय हुआ। ये लोग भी गज़नी के तुर्कों से पराजित होकर भाग गये। गज़नवियों के प्रधान का नाम महमूद था। यह ९९८–१०३० ई० तक अफ़ग़ानिस्तान का राजा रहा। भारत भी इसके आक्रमण से नहीं बचा। गज़नी में इसने एक विश्वविद्यालय स्थापित किया और दान से मुग्ध होकर फ़िरदौशी आदि कविगण उसके राज्य में आये। इसी के राजत्वकाल में गज़नी क़िला, उच्चअट्टालिकाएं मसजिद और उत्तम उत्तम मार्गों से शोभित हुई थी। महमूद के मरने पर अफ़ग़ानों के विप्लव से उसका राज्य नष्ट हो गया।

अब ग़ोरी वंश का अभ्युदय हुआ। इसमें प्रसिद्ध राजा शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी था। इस ने भारत की उत्तर सीमा पर अधिकार कर दिल्ली में मुसलमानों का राज्य स्थापित किया। इसकी मृत्यु के अनन्तर इसके तुर्क प्रतिनिधि ने अपने को स्वाधीन बनाया। इसका राज्य 'गुलाम' नाम से ख्यात है। थोड़े दिनों पीछे मोग़लों ने चंगेज़ख़ाँ के सेनापतित्व में आकर ग़ुलाम घराने पर हमला किया। तदनन्तर नरपिशाच तैमूरलंग आया। दिल्ली का ध्वंस इसी ने किया। इसके मरने पर इसका राज्य छिन्न भिन्न हो गया। इसके वंशधर इस समय हिरात, बलख़, गज़नी, काबुल और कन्धार में राज्य करते थे। बदख़शाँ काबुल और कन्धार का राजा बाबर तुर्कों

ग्रैार अफ़गानों को लेकर भारत में ग्राया ग्रैार दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी को पानीपत में पराजित कर दिल्ली का अधिकारी बन बैठा। बाबर अधिक दिन तक राज्य न कर सका। उसका लड़का हुमायूं शेरशाह से हार कर भागा। बाबर के पोते अकबर ने १५५६ से १६०५ ई० तक शासन कर मोग़ल राज्य को सुदृढ़ कर दिया। अब अफ़गानी लोग किसी गिनती में न रहे। इसके बाद उज़बग लोगों ने बदख़शाँ पर अधिकार कर लिया। फ़ारस वंशी शर्फ़ावद लोगों ने हिरात ग्रैार कन्धार पर अधिकार किया। गज़नी ग्रैार काबुल मुग़लों के हाथ में आए।

१७०८ ई० में कन्धार के ग़िलज़ाइयों ने फ़ारसियों को पराजित किया ग्रैार कई वर्ष बाद फ़ारस के शरफ़ाबद लोगों को भगा दिया। अबदाली (दुरानी) हिरात ग्रैार खुरासान के शासक बन गये। उक्त दोनों जातियों को नादिरशाह ने फ़ारस से भगा दिया। सारा अफ़गानिस्तान ग्रैार मुग़ल साम्राज्य अब नादिरशाह के हाथ में आया। इसने दिल्ली में भयानक कत्ल-आम किया। १७४७ ई० में नादिरशाह गुप्त शत्रु के हाथ से मारा गया। इस समय अफ़गानिस्तान अबदाली वंश की सादोज़ाई जाति के नेता अहमदशाह की अधीनता में स्वतंत्र हो गया। अहमदशाह का राज्य खुरासान, कश्मीर, सिंध ग्रैार पंजाब तक विस्तृत था। १७६१ ई० में अहमदशाह ने पानीपत में मरहट्ठों को हराया। इसी पराजय से मानों अँगरेज़ी राज्य का सूत्रपात हुआ।

अहमदशाह की मृत्यु के पीछे उनकी तैमूरवंशी सन्तान सिंहासनारूढ़ हुई। इसने २० वर्ष तक राज्य किया। इस समय पुराने राज्य के बलख़ ग्रैार अफ़गान-तुर्किस्तान के ग्रैार ग्रैार स्थान भी स्वाधीन हो गये ग्रैार दुर्रानी लोग उन स्थानों का राज्य खो बैठे। खुरासान ग्रैार कश्मीर में भी इस समय विद्रोह फैला। १७९३ ई० में तैमूर का देहान्त हुआ। उसका पुत्र जमान राज्याधिकारी हुआ। उसके राजत्व में पंजाब का पूर्व प्रदेश राज्य से निकल गया। १७९९ ई० में तैमूर के महमूद नामक एक दूसरे पुत्र ने राज्य पर अधिकार जमा लिया। १८०३ ई० में उसके भाई शुजा मिरज़ा ने षडयंत्र रच के राज्य को अपने हस्तगत किया। यह 'शाह शुजा उलमुल्क' नाम से ख्यात हुआ। १८०९ ई० में फ़ारस में नेपोलियन के षडयंत्र के कारण स्टुअर्ट एलफ़िनस्टन शाह शुजा के निकट प्रतिनिधिस्वरूप भेजे गये परन्तु उनसे कुछ नहीं बन पड़ा। इस समय अफ़गानिस्तान अन्तरविप्लव से पूर्ण था। शाहशुजा का शासन कोई पसन्द न करता था। कश्मीर में भी विद्रोह दमन के लिये शाहशुजा को लड़ाई लड़नी पड़ी। उपयुक्त समय देख राज्यच्युत महमूद शाह ने शाहशुजा पर आक्रमण किया। इस लड़ाई में शाहशुजा पराजित होकर भाग गया। महमूद फिर राजा हुआ। ६ वर्ष पीछे शाहशुजा लुधियाने में अँगरेज़ों की शरण आया। महमूद ने ९ वर्ष राज्य किया परन्तु वह नाम मात्र को राजा रहा। राज्य का सब भार मन्त्री फ़तेहख़ाँ पर था। फ़तेह ख़ाँ ने ईरानियों को हराकर ईरान पर अधिकार कर लिया। १८६७ ई० में महमूद ने फ़तेहख़ाँ की आँखें निकलवा लीं। फ़तेहख़ाँ के भाई दोस्त मुहम्मद ग्रैार मुहम्मद अज़ीम ने भी बदला लेने के लिये महमूद के साथ युद्ध किया। उसका फल यह हुआ कि महमूद काबुल से भगा दिया गया।

कई वर्ष तक अफ़गानिस्तान में कोई राजा न रहा। मुहम्मद अज़ीम राज्य-कार्य चलाते थे परन्तु वे न तो राजा ही थे ग्रैार न अमीर। अतः अन्यान्य शासनकर्ता उनकी बात का तिरस्कार करने लगे। क्रमशः गड़बड़ पड़ने लगा। हिरात हस्तच्युत हुआ, अफ़गान, तुर्किस्तान ग्रैार बदख़शां भी हाथ से निकल गये ग्रैार रणजीतसिंह कश्मीर मुलतान, डेरागाज़ी ख़ाँ ग्रैार अटक के अधिकारी बन बैठे। १८२३ ई० में नैाशेरवां की लड़ाई में रणजीतसिंह ने अफ़गानों को हरा कर पेशावर पर अधिकार कर लिया। इसी समय मुहम्मद आज़िम का देहान्त हुआ। १८२६ ई० में दोस्त मुहम्मद ने काबुल ग्रैार ग़ज़नी पर अधिकार किया। क्रमशः जलालाबाद भी उसके हाथ में आगया। १८२६ ई० में शाहशुजा अपने गये राज्य को फिर

पाने के लिये अफ़ग़ानिस्तान में आया परन्तु युद्ध में हार कर भाग गया। १८३५ ई० में दोस्त मुहम्मद ने अपने को अमीर बना कर इस बात की घोषणा कर दी।

१८३६ ई० में रणजीतसिंह और अमीरों में सख्यभाव स्थिर रखने के लिये अँगरेज़ मध्यस्थ हुए। अमीर चाहते थे कि अँगरेज़ रणजीतसिंह के विरुद्ध उनकी सहायता करें। अँगरेज़ सर्कार उसमें सहमत नहीं हुई। इस समय कैप्टिन कूच नामक एक रूसी सेनानायक को अमीर ने नौकर रक्खा। अँगरेज़ों ने उसे हटाने की प्रार्थना की। अमीर के इस पर राज़ी न होने पर शाहशुजा को अफ़ग़ानिस्तान का राज्य दिलाना अँगरेज़ी सर्कार ने निश्चित किया। अँगरेज़ों ने रणजीतसिंह से मिलकर अफ़गानिस्तान पर चढ़ाई की। दोस्त मुहम्मद मारा गया और शाहशुजा राज्याधिकारी बनाया गया।

१८४० ई० में दोस्त मुहम्मद ने आत्मसमर्पण किया और वह भारतवर्ष में लाया गया। १८४१ ई० में फिर विद्रोह हुआ। बर्न और अन्यान्य अँगरेज़ कर्मचारी मार डाले गये। विपद पर विपद आती गई। दोस्त मुहम्मद के पुत्र अकबरख़ाँ के परामर्श से सर विलियम मेकनाटन मार डाले गये। छठी जनवरी १८४२ ई० को अँगरेज़ों ने अफ़गानिस्तान छोड़ने की प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर किये। इस समय अँगरेज़ी सेना की संख्या ४६०७ थी जिसमें ६९० यूरोपियन थे। ये लोग मै बारबरदारों के भारत को आने लगे। इस समय जाड़ा बहुत पड़ता था। सेना वालों को अधिक शीत के कारण अत्यंत क्लेश उठाना पड़ा। अफ़गानों ने सुअवसर देख सेना पर आक्रमण किया। इसका फल यह हुआ कि अँगरेज़ी सेना नष्ट हो गई। केवल १३ सैनिक १३वीं जनवरी को गेंडामांक में जीवित लौटे। जिन लोगों ने काबुल छोड़ा था उनमें से डाक्टर ब्राइडन मात्र ही घायल और अर्धमृत अवस्था में जलालाबाद लौट कर आये। बाद को ९२ आदमी शत्रु के हाथ से छुड़ाये गये। ग़ज़नी की अँगरेज़ी सेना ने अफ़गानों को आत्मसमर्पण किया। किन्तु सेनापति नाट कन्धार में सेना-सहित ठहरे हुए थे। सेनापति सेल जलालाबाद को लौट आये।

अब अँगरेज़ सर्कार ने बदला लेने का संकल्प किया। १८४२ ई० के अप्रैल मास में सेनापति पोलक ख़ैबर पास से जलालाबाद में जा पहुँचा और सितम्बर में उसने काबुल पर अधिकार कर लिया। सेनापति नाट ग़ज़नी को ध्वंस करके उससे आ मिले। बामियान में जितने क़ैदी थे सब छोड़ दिये गये। काबुल का बाज़ार भी नष्ट कर दिया गया। बदला लेने के पीछे दिसंबर सन् १८४२ में अँगरेज़ों ने अफ़गानिस्तान छोड़ दिया। इसी समय शाहशुजा गुप्त शत्रु द्वारा मारा गया। दोस्त मुहम्मद ख़ां अँगरेज़ी राज्य छोड़ काबुल में गया और १८६३ ई० तक राज्य करता रहा।

१८४८ ई० में सिक्ख युद्ध के समय सिक्खों ने दोस्त मुहम्मदख़ाँ को पेशावर लौटा देने का लोभ देकर अपने में मिला लिया। दोस्त मुहम्मद ने सिक्खों से मिल कर अटक पर अधिकार कर लिया परन्तु अँगरेज़ों के पेशावर पर अधिकार जमा लेने पर अफ़ग़ानों की आशा नष्ट हो गई।

१८५० ई० में दोस्त मुहम्मद ने बलख़ छीन लिया १८५५ ई० में अँगरेज़ों से इनकी सन्धि हुई। कन्धार भी इस समय दोस्त मुहम्मद के अधिकार में आ गया। १८५६ ई० में ईरानियों ने हिरात पर दख़ल कर लिया। १८५७ ई० में अमीर ने पंजाब के चीफ़ कमिश्नर सर जान लारेंस के साथ पेशावर में भेंट की। इस समय अँगरेज़ सर्कार ने अमीर को ईरानियों से बचाने के लिये अस्त्र शस्त्र दिये।

१८६३ ई० में दोस्त मुहम्मद ने हिरात ले लिया पर १३ दिन पीछे उसकी मृत्यु हो गई। उसका लड़का शेरअली गद्दी पर बैठा परन्तु भ्रातृविरोध आरंभ हुआ। अनेक लड़ाइयों के पीछे शेरअलीख़ाँ राज्य में प्रविष्ट हुआ। १८६९ में शेरअली ने अर्ल म्यो के साथ अम्बाले में मुलाक़ात की और सख्यता बनाए रखने की प्रतिज्ञा की। इस समय मित्रता

दिखाने के लिये अँगरेज़ों ने बाक़ी रुपया अमीर को दे दिया। अँगरेज़ों ने १२००००) पौंड देना अंगीकार किया था। इस समय वह सब चुका दिया गया। इसके पीछे कभी कभी रुपया और अस्त्र-शास्त्र भारतसरकार शेरअली को देती रही।

१८७८ ई० के जुलाई मास में रूस मिशन काबुल में आया। शेरअलीख़ाँ ने उन लोगों को तो आने दिया परन्तु अँगरेज़ी मिशन के काबुल जाने में आपत्ति की। अँगरेज़ों ने उन्हें बहुत समझाया कि उसकी सख्यता अँगरेज़ों से है रूस से नहीं, परन्तु उसने एक न मानी अतः अँगरेज़ों को हथियार उठाना पड़ा। अमीर पराजित होकर भाग गया और ३ महीने पीछे उसका देहान्त हो गया। उसका पुत्र याकूबख़ाँ अमीर हुआ। १८७९ ई० में याकूबख़ाँ अपनी इच्छा से गेंडामांक में आया और उसने अँगरेज़ों से संधि की। अँगरेज़ों ने प्रसन्न हो उसको कुर्रमघाटी और पेशीन लौटा दी। अमीर काबुल में एक रेज़ीडेंट रखने पर राज़ी हुए। मेजर सर लुइस कैवगेनरी रेज़ीडेण्ट नियुक्त हुए परन्तु वे भी अफ़गानों के हाथ से मारे गये। सेनापति राबर्ट्‌स ने जो अब लार्ड राबर्ट्‌स नाम से ख्यात हैं १८७९ ई० में काबुल को जीता। याकूबख़ाँ क़ैद करके भारत में भेजे गये। तब से वह भारत में ही रहने लगे। दोस्त मुहम्मद के पौत्र अब्दुर्रहमान को अँगरेज़ो ने अमीर बनाया। १८८० ई० के अगस्त मास में अँगरेज़ काबुल से लौट आये। उस समय सरदार शेरअलीख़ाँ को अँगरेज़ों ने कन्धार में स्वाधीन अधिकारी स्वीकार किया। जुलाई में याकूबख़ाँ के छोटे भाई सरदार मुहम्मद अयूबख़ाँ ने हिरात से ससैन्य आकर अँगरेज़ों से मैवंद और कन्धार छीन लिया। सेनापति राबर्ट्‌स ने कन्धार का पुनः उद्धार किया। शेरअलीख़ाँ अपने स्थान पर दृढ़ न रह सका अतः वह पेंशन देकर भारत को भेजा गया। आयूबख़ाँ ने हिरात से आकर अमीर अब्दुर्रहमान की सेना को पराजित कर कन्धार पर फिर अधिकार कर लिया परन्तु विजयलक्ष्मी बहुत दिन तक उसके आश्रित न रही। सितम्बर १८८१ ई० में अमीर अब्दुर्रहमान ने उसे हटा कर कन्धार पर फिर से अधिकार कर लिया।

अँगरेज़ों ने पहिले अब्दुर्रहमान को केवल काबुल का अमीर बनाया था परन्तु अब कृपा कर कन्धार और हिरात भी उन्हें दे दिया। उनके साथ अँगरेज़ों की यह सन्धि हुई कि उनकी स्वाधीनता पर अँगरेज़ राज्य हस्तक्षेप न करेगा परन्तु अन्य राज्यों के सम्बन्ध के लिये उन्हें अँगरेज़ों की राय लेनी होगी। अमीर इस पर राज़ी हुए। १८८३ ई० से अँगरेज़ उनको १२ लाख रुपये साल देने लगे। यह रुपया अमीर की सेना के व्यय के लिये और अफ़ग़ानिस्तान की दक्षिण पश्चिम सीमा दृढ़ करने को दिया गया।

१८८४ ई० में रूसियों के मर्व पर अधिकार करने पर अफ़ग़ानिस्तान का उत्तर सीमान्त ईरान से आक्सस तक स्थिर करना उचित समझा गया। अँगरेज़ और रूस सरकार में पत्र व्यवहार होकर अमीर की राय से सीमा स्थिर करने के लिये एक कमीशन बैठाई गई। शरक नामक स्थान में दोनों कमीशनों के बैठने का निश्चय हुआ। अँगरेज़ कमिश्नर सर पीटर लैंसडोन सीमान्त प्रदेश में उपस्थित हुए परन्तु रूस कमीशन आई ही नहीं। १८८५ ई० के मार्च में जब दोनों राज्य सीमा स्थिर करने में लगे थे तब रूसी सेना ने अफ़गानों को पांजदे नामक स्थान पर आक्रमण कर पराजित किया। परन्तु इस समय अमीर भारत में थे इसलिये युद्ध विग्रह नहीं हुआ। जून १८८६ में अफ़ग़ान सीमा स्थिर हो गई। इस समय जुलफिकार से डुगची के मध्यवर्ती स्थान तक सीमान्त स्तंभ स्थिर किया गया। १८८८ ई० के जुलाई मास में कमीशन का कार्य समाप्त हो गया।

अमीर के अत्याचार से पीड़ित हो गिलज़ाई जाति १८८७ ई० में विद्रोही हुई किन्तु अन्त में परास्त हुई। विद्रोही लोगों ने अधीनता स्वीकार की।

१८८४ ई० में अमीर अब्दुर्रहमान का भतीजा मुहम्मद इशाकख़ाँ जो अफ़गान-तुर्किस्तान में अमीर का प्रतिनिधि स्वरूप था विद्रोही हुआ। यद्यपि पहिले अमीर की पराजय हुई परन्तु अन्त में अमीर विजयी हुआ। गज़नी की लड़ाई में मुहम्मद इशाकख़ाँ का भाग्यसूर्य अस्त हो गया। वह बुख़ारा भाग गया और रूस राज्य का पेंशन भोगी होकर वहीं रहने लगा। १८९० ई० में फ़ीरोज़-कोही स्थान के सिनधारी लोग विद्रोही हुए। यद्यपि अमीर विजयी हुआ परन्तु विद्रोह दमन करने में २ साल लग गये। १८९१ ई० में ईरान और अफ़गानिस्तान का सीमान्त मेजर जनरल सी० एस० मेकलीन द्वारा स्थिर हो गया। १८९३ ई० में पामीर और अफ़गानिस्तान सीमान्त विषय पर अँगरेज़ और रूसियों में जब मीमांसा हो गई, तब भारत सरकार के वैदेशिक मंत्री सर मार्टियर डुरंड ने मिशन लेजाकर अमीर को पूरा मामला समझा दिया। अमीर ने सन्तुष्ट होकर आक्सस नदी का बाहरी भाग जिस पर उसने अधिकार कर लिया था छोड़ दिया और उसके बदले में दरवाज़ प्रदेश उनको मिला। इस समय अँगरेज़ और अफ़गान सीमान्त भी स्थिर हुआ। अँगरेज़ सरकार अपनी बन्धुता दृढ़ करने के लिये अमीर को १८ लाख रुपया देने लगी। अमीर भी वृत्ति बढ़ने से अँगरेज़ों के कृतज्ञ हुए। १८९६ ई० में अमीर ने काफ़िरस्थान को जीत कर उसे अपने अधिकार में कर लिया।

२१ साल राज्य करने के अनंतर अमीर अब्दुर्रहमान अक्टूबर सन् १९०१ ई० में काबुल में मृत्यु को प्राप्त हुए। उनके पुत्र हबीबुल्लाख़ाँ सिंहासनारूढ़ हुए। अमीर अब्दुर्रहमान अत्यंत अत्याचारी होने पर भी राज-कार्य में विशेष दक्ष थे। उनके राज्य-काल में अफ़ग़ानिस्तान ने जिस भाँति शांति उपभोग की पहिले वैसी शांति उसे कहीं नहीं मिली थी। सैन्य बल के भी नये भाव से गठित होने के कारण उसमें नया जीवन आ गया।

हबीबुल्ला सिंहासन पर बैठते ही नई नई उन्नति करने लगे। देश में शांति का राज्य हुआ। राज्यकर घटा दिया गया और सैन्य-विभाग की उचित उन्नति हुई।

हेलमन्द नदी की गति बदलने पर १९०३ ई० में अफ़गान ईरान सीमान्त सर ए० एच० मैकमोहन ने स्थिर किया। १९०४ ई० के दिसम्बर मास में सरदार इनायतुल्लाख़ाँ कलकत्ते में बड़े लाट के साथ भेंट करके काबुल लौट गये। १९०५ ई० के मार्च मास में काबुल में एक मिशन भेजा गया। अमीर के पिता के साथ अँगरेज़ों की जो सन्धि थी वह उन्हें भी मान्य है, यह उन्हें भली भाँति समझा दिया गया। अमीर भी सम्मत हुए। इस कमीशन के नेता सर लुइ डेन थे। १९०७ में अमीर स्वयं भारत में आये।

अफ़गानिस्तान का पुरातत्त्व देखने से ही प्रतीत होगा कि ईरानी, ग्रीक, हिन्दू, बौद्ध और मुसलमान अपनी अपनी शक्ति के चिह्न वहां छोड़ गये हैं। काबुल के उत्तर हेदामन नामक स्थान में सिकन्दर की प्रचलित अनेक मुद्राएं मिली हैं। मुसलमानों ने हिन्दू और बौद्ध अट्टालिकाओं को तोड़ डाला। कोहे काबू के उत्तर काबुल प्रदेशांतर्गत बौद्ध स्तूपादि अब भी देख पड़ते हैं। चंगेज़ख़ाँ ने जो देशध्वंस किया उसके भी चिह्न देख पड़ते हैं। ग़ज़नवी महमूद ने जो क़बरें, प्रासाद और मसजिदें बनाईं थीं काल के प्रभाव से आज उनका ध्वंसावशेष देख पड़ता है। पुलकी, किलाफ़तेह, नादाली, चकन शूर, जहीदान, दूशाक, पेशावरन और सामूर के ध्वंसावशेष आज भी तैयूर की विजय का परिचय दे रहे हैं। तख़्ते रूसन में जनरल मेटलैंड ने १८८६ ई० में बौद्ध स्तूप का पता लगाया था।

अफ़गानिस्तान में भिन्न भिन्न जातियों का समावेश हुआ है। यद्यपि धर्म सूत्र से सब एक में बँधे हैं तथापि शिया और सुन्नी दल पृथक् होने से धर्म-

बन्धन ग्रैार जाति-बन्धन में दृढ़ता नहीं है। किर्त-ज़लवासी ग्रैार हज़ारावासी शियाधर्मावलम्बी ग्रैार अल्प संख्यक होने के कारण सुन्नी लोगों से सताये जाते हैं। अमीर के अधीन कितने पुरुष बसते हैं यह निश्चय करना कठिन है क्योंकि आज तक वहाँ मर्दुमशुमारी हुई ही नहीं। अनुमान से ५ लाख पुरुष होंगे। पुराकाल के प्रासाद आदि देख कर यही अनुमान होता है कि जनसंख्या पहिले बहुत थी ग्रैार पुरातन नगर की शोभा के सामने आधुनिक काबुल किसी गिनती में नहीं है।

यहाँ के लोगों को दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं (१) अफ़ग़ान, (२) अन-अफ़ग़ान। प्रथम संख्या में अधिक न होने पर भी शक्ति में बड़े हैं। अफ़ग़ान अपने को बनीसराइल कहते हैं। पैलेस्टाइन से मिडिया में नीबूकटनीज़ार जिन लोगों को बलपूर्वक पकड़ लाये थे अफ़ग़ान उन्हीं के वंशधर हैं।

दुरानी अथवा अब्दाली जाति राजा की जाति है। गिलज़ाई लोगों की संख्या डेढ़ लाख है। कन्धार प्रदेश कन्धार ग्रैार हिरात का मध्यवर्ती स्थान है। अफ़गानिस्तान के दक्षिण की भूमि में दुर्रानी लोग निवास करते हैं।

गिलज़ाई ग्रैार सिनवारी लोग अफ़गानों में अति शक्ति-शाली ग्रैार साहसी हैं। ये लोग कन्धार के उत्तर के प्लेटो, सुलेमान पर्वत के पूर्व ग्रैार पश्चिम, एवं काबुल नदी के उत्तर में बास करते हैं। ये लोग हिरात, काबुल ग्रैार फ़री में देख पड़ते हैं। अनेक लोगों का अनुमान है कि गिलज़ाई जाति तुर्कों के ख़िलजी वंश से हैं। ग़ज़नी के महमूद के पिता सुबुक्तगीन इन लोगों को जैकज़रटिज़ प्रदेश से लाये थे। परन्तु अफ़ग़ान अपने को 'गलज़ो' वंश का बतलाते हैं। 'गलज़ो' का अर्थ चोर है। ईरान के ग़ोरी वंशोद्भव शाकहुसेन के साथ क़ईस अब्दुल-रसीद की नतिनी बीबी मतो की अविवाहितावस्था में जो सन्तान हुई थी अफ़ग़ान उसी के वंशधर हैं। अफ़गानों में ताज़िकों की संख्या अधिक है। ये लोग लग भग १ लाख हैं। इनका मुख्य निवासस्थान हिरात है परन्तु ये अफ़गानों के साथ मिलकर बास करते हैं। येही प्राचीन ईरानी जाति के हैं। इनकी मातृभाषा फ़ारसी है। ये लोग कृषक हैं। किसी भी राजकार्य में ये लोग भाग नहीं लेते। शहर में ये लोग कारख़ानों में काम करते हैं क्योंकि अफ़गान कारख़ानों में काम करना ये पसन्द नहीं करते।

इसके बाद हज़ारा जाति है जिनकी संख्या लग-भग ३ लाख है। ये लोग मुग़ल जाति के हैं। इनकी मातृभाषा फ़ारसी है। हज़ाराजात में इनका निवास है। ये शिया हैं। परिश्रमी होने के कारण भारतीय सेना में भी ये भरती किये जाते हैं।

हिरात प्रदेश में जमशेदी, फ़ीरोज़कोही, तैमूरी ग्रैार ताइमानी जातियाँ देख पड़ती हैं। ये चहार ऐमक कहलाते हैं। इनकी संख्या १८०००० है। इनकी मातृभाषा फ़ारसी है। बहुत से तैमूरी अब खुरासान में आकर बसे हैं।

उज़बक जाति की संख्या प्रायः ३ लाख है। ये लोग अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में रहते हैं। इनकी तिहाई संख्या कन्धार में है।

इज़ील वासियों की संख्या लगभग ५० हज़ार है। ये तुर्क जाति के हैं। नादिरशाह इन लोगों को १७३७ ई० में अफ़गानिस्तान में लाया था। इनका वासस्थान काबुल है। ये लोग डाकूर ग्रैार लेखक होते ग्रैार अमीर के दफ़्तरों में मुहर्रिरी का कार्य करते हैं। यद्यपि ये लोग शिया हैं तथापि अमीर इनको ऊँचे ऊँचे पदों पर नियत करते हैं।

अफ़गानिस्तान में हिन्दू जाति की संख्या प्रायः ३५ सहस्र है। यद्यपि ये लोग सताये नहीं जाते तथापि इन्हें कुछ राजकर देने पड़ते हैं जो ग्रैारों को नहीं देने पड़ते।

अन्य जातियों में शफ़ी, कश्मीरी, लघमाती, अरब, सैय्यद, पराच ग्रैार काफ़िर हैं। ये लोग काफ़िरस्तान के निवासी हैं। जलालाबाद के उत्तर में काफ़िर स्थान है।

अफ़गान जाति की भाषा पश्तू है। अन-अफ़-

गान फ़ारसी बोलते हैं। अफ़ग़ानों में भी फ़ारसी का प्रचार होने लगा है। दफ़्तर का काम सब फ़ारसी ही में होता है। हिन्दूकुश के उत्तर में जो लोग निवास करते हैं वे तुर्की बोलते हैं। बदख़्शाँ में फ़ारसी बोली जाती है। आक्सस नदी के ऊपरी भाग में अनेक भाषायें प्रचलित हैं। लघमन और जलालाबाद के अनेक स्थानों में लघमानी भाषा में बात चीत की जाती है। ये लोग भी अन-अफ़गान हैं। काफ़िर स्थान में कई भाषायें बोली जाती हैं। अफ़गानिस्तान के दक्षिण पश्चिम में बलूची भाषा प्रचलित है।

स्वात का विजय इतिहास पश्तू भाषा का अति प्राचीन ग्रन्थ है। शेखमाली नामक एक इशुफजाई सेनापति इसका प्रणेता है। अफ़गान पुस्तकें पद्य में लिखी जाती हैं। अब्दुर्रहमान सर्वोत्तम कवि था। यह १७ वीं शताब्दी में हुआ था।

अफ़गान देखने में सुन्दर और बलिष्ठ होते हैं। दाम्भिकता इनका जातीय गुण है। बाल्य काल से ही ये लोग रक्तपान में अभ्यस्त होते हैं, मृत्यु से ये नहीं डरते, आक्रमण करने में ये बड़े ही साहसी हैं परन्तु हारने पर शीघ्र ही इनका दिल टूट जाता है। ये लोग विश्वासघातक और बदला लेनेवाले होते हैं। अपनी जान देकर भी ये लोग अपना उद्देश साधन करते हैं। दोष के लिये कठिन दण्ड पर भी ये डरते नहीं। सामान्य सी बात के लिये भी ये गुरुतर पाप कर बैठते हैं। स्त्रियाँ बहुत ही सुन्दरी होती हैं। युवावस्था में ये गुलाब के फूल जैसी होती हैं। शारीरिक गठाव यहूदी स्त्रियों की भाँति होता है। परदे का नियम अत्यन्त कठिन होने पर भी इनमें व्यभिचार बहुत होता है। व्यभिचार का दण्ड फाँसी है परन्तु तब भी इसमें कमी नहीं होती। अफ़गान लोग अतिथिसेवी हैं। अतिथि और विदेशी लोगों को देशी अतिथिशाला में मुफ़्त में खिलाया जाता है। ये लोग अपना जीवन देकर भी आश्रित की रक्षा करते हैं यहाँ तक कि कठिन शत्रु होने पर भी शरण आने पर उसकी रक्षा करना अपना धर्म मानते है। परन्तु तभी तक जब तक उनके मकान में रहे। मकान से बाहर होने पर उसे लूट लेने में ये लोग नहीं चूकते। कुटुम्बी के घातक की जान लेने को 'किशास' कहते हैं।

अफ़गान अपने धर्म को कुछ नहीं जानते। ईश्वर का अस्तित्व, पैग़म्बर, पुनरुत्थान और मृत्यु के बाद विचार के दिन (क़यामत) पर इनका विश्वास है। ये लोग मुल्लाओं की बात बहुत मानते हैं विशेषतः जब किसी को हानि पहुँचानी होती है। यह जाति बड़ी ही कुसंस्कारापन्न है। भूत, प्रेत, तावीज़, मन्त्र, वशीकरण आदि में इनका अटल विश्वास है। पीर लोगों पर इनकी अत्यंत श्रद्धा है। इनका विश्वास है कि पीर की कृपा से लोग अच्छे होते, बाँझ के लड़का होता और मृत व्यक्ति स्वर्गलाभ करता है। ये लोग यह भी मानते हैं कि मानवमात्र पापी है अतः ईश्वर तक पहुँचना अत्यंत कठिन है पीर की कृपा बिना परमेश्वर तक कोई नहीं पहुँच सकता।

अन्य मुसलमानों की भाँति ये लोग भी मुर्दों को दफ़न करते हैं। मृत्युकाल में मुल्ला आ कर तत्कालोचित कार्य करते हैं। मरने के समय ईश्वर का नाम लेकर मक्के की ओर मुँह करके ये मरते हैं। मर जाने पर मृत देह को धोकर एक कफ़न के अंदर रख कर गाड़ देते हैं। मुल्ला ईश्वर का नाम लेते हैं। धनाढ्य व्यक्ति क़बर के ऊपर एक पत्थर लगाते हैं।

अफ़गान लोग स्त्री मोल लेते हैं। स्वामी बिना किसी कारण के ही स्त्री को परित्याग कर सकता है। प्रबल युक्ति रहने से विवाह-बन्धन छिन्न करने के लिये स्त्री काज़ी के निकट प्रार्थना कर सकती है। परन्तु प्रायः स्त्रियाँ ऐसा नहीं करतीं। स्त्री के जीवित रहते यदि स्वामी मर जाय और यदि रमणी दूसरा व्याह करे तो मृत पति के कुटुम्बी रमणी से व्याह का मूल्य फेर लेते हैं। विधवा स्त्री का व्याह साधारणतः मृत पति के भाई के साथ होता है। यदि और कोई व्याह करले तो देवर के लिये

बड़े ही अपमान का विषय है। यदि स्त्री न चाहे तो दूसरा व्याह करने का दबाव उस पर नहीं डाला जाता। यदि विधवा के पुत्रादि हों तो स्त्रियाँ अधिकतर पुनर्विवाह नहीं करती हैं। पुरुष २० वर्ष में श्रोर स्त्रियाँ १५ या १६ वर्ष में व्याह करती हैं। साधारणतः स्त्री मोल लेने को जब तक रुपया न हो या विवाहित जीवन की व्यय निर्वाह का जब तक सुबीता न हो तब तक विवाह नहीं किया जाता। धनाढ्य लोग यैावनावस्था के पहिले ही विवाह करते हैं। शहरवाले ग्रामवालों की अपेक्षा कम उमर में व्याह करते हैं। अफ़गानिस्तान के पूर्वाञ्चल में १५ वर्ष के बालक के साथ १२ वर्ष की कन्या का व्याह होता है। साधारणतः अपनी जाति ही में व्याह किया जाता है परन्तु अफ़गान ताजिक श्रोर ईरानी स्त्री भी ग्रहण करते हैं। शहर में पुरुषों को स्त्री देखने का अवसर नहीं मिलता अतः कुटुम्ब की स्त्रियाँ व्याह ठीक करती हैं। किन्तु व्याह में बर श्रोर कन्या की सम्मति अवश्य ली जाती है। कुटुम्बियों की सम्मति अग्राह्य है। जहाँ स्त्रियों का पुरुषों के साथ मिलने का विशेष निषेध नहीं है वहाँ प्रेम ही विवाह का कारण होता है। वह विवाह मुसलमानी धर्म के विरुद्ध न होने पर भी बहुतों को आज्ञा कठिनता से मिलती है। धनाढ्य लोगों में कोई कोई चार से भी अधिक व्याह करते हैं परन्तु उपपत्नी श्रोर ग़ुलाम रखने में उन लोगों को कोई निषेध नहीं है। वर्तमान अमीर प्रजा को ४ से अधिक स्त्रियाँ नहीं रखने देते श्रोर स्वयं भी १९०३ ई० में उन्होंने चार स्त्रियों को छोड़ शेष स्त्रियों को परित्यक्त कर दिया। एक समय में स्त्रियों को बहुपति करने का अधिकार नहीं है। अफ़गानिस्तान में ग़ुलाम रखने की प्रथा अब नहीं है। पहिले प्रत्येक धनाढ्य विशेषतः हज़ारा जाति वाले ग़ुलाम रखते थे। परन्तु वर्तमान अमीर ने ग़ुलाम बेचने तथा ख़रीदने के विरुद्ध आज्ञा प्रचलित की है श्रोर उसके लिए कठिन दंड भी नियत किया है।

अफ़गान लोगों को मजबूर होकर मिताहारी होना पड़ता है। प्रायः आधे साल वे लोग फलों पर ही निर्वाह करते हैं। चर्बीपूर्ण मांस के सिवाय श्रोर किसी मांस का आहार नहीं किया जाता। जो पशु हलाल नहीं किया जाता उसका मांस खाना निषिद्ध है। पशु का मुख मक्के की श्रोर करके ईश्वर के नामोच्चारण के साथ विशेष विशेष अंग को काटना ही हलाल करना कहा जाता है। धनाढ्य लोग पुलाव खाते हैं। चावल के साथ मांस पकाने से ही पुलाव बनता है। ग्रामवासी किसान फलों का समय बीत जाने पर 'कूट' खाकर रहते हैं। अन्न को चर्बी के साथ खाने को कूट कहते हैं।

पुरुषों के कपड़े दो रहते हैं। एक के ऊपर दूसरा पहिनते हैं। एक का नाम कमीज़ श्रोर दूसरे का नाम चोगा है। यह रुई या ऊँट के रोमों से बनाया जाता है। गरमी में इनमें अस्तर नहीं लगाया जाता। जाड़े के लिये रुई या रोवों के बने कपड़े का अस्तर दिया जाता है। नीचे का कपड़ा लांगक्लाथ का होता है। कमीज़ बहुत ही बड़ी होती है। इसके एक तरफ़ गले से कमर तक खुला रहता है। यह पाजामें तक होती है। पाजामा कमर में रस्सी से बाँधा जाता है। शिर पर सफ़ेद या नीले रंग की पगड़ी बाँधी जाती है। धनाढ्य लोग रेशम या ऊनी कपड़े पहनते हैं। जाड़े में सब लोग पोस्तीन पहिनते हैं। भेड़ के चमड़े के कोट को पोस्तीन कहते हैं। आजकल सरदार श्रोर काबुल के कर्मचारी लोगों में योरोप के बने हुए कपड़े पहिनने की वासना बढ़ती जाती है। अफ़गान स्त्रियाँ बाहर जाते समय बुरका पहिनती हैं। यह सूत का बना होता है श्रोर सिर से पैर तक लटकता रहता है। केवल आँखों पर देखने के लिये दो छेद होते हैं।

गृहादि धूप में सूखी हुई ईंटों से बनते हैं। काष्ठाभाव के कारण मकानों की छतों में डाट लगाई जाती है। प्रत्येक मकान के चारों श्रोर दीवार खिंची होती है। सरदार श्रोर राज-कर्मचारियों के घर सुसज्जित होते हैं।

शिकार, कुश्ती, कुत्ते के साथ दौड़, घुड़दौड़, बटेर की लड़ाई, मेढ़ों की लड़ाई, ऊँट की लड़ाई आदि इनके मुख्य आमोद के खेल हैं । पासे का रिवाज बहुत है । बूढ़े और लड़के गोली खेलते हैं ।

रोगों में बुख़ार, बाई और सरदी साधारणतः होते हैं । जाड़े में फेफड़े का प्रदाह (न्यूमोनिया) ग़रीब लोगों को बहुत होता है क्योंकि शीत से बचने को ये लोग यथेष्ट वस्त्र नहीं पा सकते । जुलाई से अक्टूबर तक फलाहार के कारण पेट पीड़ा से बहुत से लोग मर जाते हैं । गरमी, गण्डमाला, पथरी, चर्म और चक्षुरोग अधिक होते हैं । चेचक भी थोड़ी बहुत होती है । बीस वर्ष के अंदर केवल ३ मृत्यु विशूचिका से हुईं । प्लेग का नाम भी नहीं है ।

अनाज की दो फ़सलें होती हैं रबी और ख़रीफ़ । रबी शरद में बोकर गरमी में काटी जाती है । ख़रीफ़ हेमंत में बोकर शरद में काटी जाती है । रबी में प्रधानतः गेहूँ, जौ, मसूर की दाल, और ख़रीफ़ में चावल, भुट्टा, जुनरी और कई भाँति की दालें होती हैं । अत्यंत उच्च स्थानों में फ़सल एक ही बार होती है जो हेमंत में बोई जाती और शरद में काटी जाती है । अफ़गानिस्तान में सर्वत्र ही गेहूँ प्रधान खाद्य है । अनाज के क्षेत्र दो भागों में विभक्त हैं (१) आबी (२) लामी । आबी भूमि में जल-सेचन की व्यवस्था है, लामी भूमि वर्षा के भरोसे ही रहती है । नदी से नहर काट कर सिँचाई बहुत की जाती है । कुँआ खोद कर नीचे नीचे नाली बनाते हैं इसको 'करेज़' कहते हैं । अफ़गानिस्तान के दक्षिण और पश्चिम में करेज़ बहुत प्रचलित है ।

उपर्युक्त अनाजों के सिवाय योरोपीय शस्यों की खेती भी होती है, यथा मटर, सेव, गाजर, शलजम, चिटपालक, गोभी, प्याज, लटयूस, ककड़ी और विलायती बैंगन । ये सब उत्तम भूमि में उत्पन्न होते हैं । आलू की खेती थोड़ी होती है । लूसन और त्रिपर्ण घास की खेती चारे के लिये होती है । अफ़गानिस्तान के पूर्वांचल में गन्ने की खेती होती है परन्तु कम । शकर बाहर से जाती है ।

हिरात, काबुल, कन्धार और जलालाबाद में अफ़ीम की खेती होती है परन्तु अधिक नहीं । हिरात में कपास की खेती अधिक और जलालाबाद में कम होती है । तम्बाकू अधिक उत्पन्न होता है । बदाम और रेंडी के पेड़ देश में सब स्थानों में देख पड़ते हैं । तिल और सरसों की खेती भी अधिक होती है । मदार पश्चिमांचल में बहुत होता है और भारत को बहुत भेजा जाता है ।

अफ़गानिस्तान फल के लिये प्रसिद्ध है । सेव, नाशपाती, बदाम, शफ़ालू, एप्रिकट, जामुन, चेरी, अनार, अंगूर, अंजीर और तूत सभी स्थानों में होते हैं । इन सब में अंगूर प्रधान है । अंगूर ४० प्रकार के होते हैं और बहुत से खाने में बहुत ही उत्तम होते हैं । अंगूर और एप्रिकट सुखा कर भारत को भेजे जाते हैं । तूत को सुखा कर बूँक लेते हैं और उसके लडडू बना कर ग़रीब लोग जाड़े में खाते हैं । अख़रोट और चिलगोज़ा उत्तर और पश्चिम के जंगलों में होते हैं, हिरात प्रदेश, फ़ीरोज़ कोही और किलानाव स्थानों की पहाड़ी जगहों में ये फल स्वयं होते हैं । शारधा नामक एक प्रकार की फूट खाने में प्रायः अंगूर की भाँति होती है ।

मृत अमीर की जीवित दशा में शराब बनना प्रारम्भ हुआ था । मुसलमानी धर्म में शराब मना है परन्तु अमीर इसका प्रतिपालन न कर १९०१ ई० में एक आस्टियन कर्मचारी को नियुक्त कर उससे मद्य बनवाने लगे । जब अफ़गानिस्तान में अंगूर बहुत होता है तो मद्य न बनने का कोई कारण नहीं देख पड़ता ।

अफ़गानिस्ताननिवासियों के घोड़े, ऊँट, गाय, भेड़, बकरी आदि पशु सम्पत्ति समझे जाते हैं । आजकल घोड़े की रफ़्नी अधिक है । अब्दुर्रहमान की जीवित दशा में एक आज्ञा घोड़ों को बाहर न भेजने के लिये हुई थी । प्रत्येक घोड़े की रजिस्टरी थी और यदि कोई देश के बाहर जाता तो उसके लौट

आने के लिये मालिक से ज़मानत ली जाती थी। याबू नामक एक जाति का घोड़ा गाड़ी खींचने के काम में आता है। ये घोड़े बहुत कम-सहिष्णु होते हैं। अमीर दोस्तमुहम्मदख़ाँ अरबी घोड़ों की संख्या बढ़ाने की सदैव चेष्टा किया करते थे। अमीर अब्दुर्रहमान ने अरब और इँगलिश घोड़ों की संख्या बढ़ाने के लिये एक पशु-शाला और एक अँगरेज़ चिकित्सक नियत किया था। पीछे यह सरदार की निगरानी में रक्खा गया। खेती और अनाज माड़ने के लिये बैल काम में आता है। दुम्बा मेढे की भाँति का होता है। एक का रंग श्वेत दूसरे का धूसर या काला होता है। हिरात और कन्धार से उनकी रफ़्नी अधिक होती है। आज कल अँगरेज़ी सौदागर ऊन अधिक ख़रीदते हैं। भेड़ का मांस ही अफ़ग़ानिस्तान में प्रधान खाद्य है। हिरात और अफ़गान-तुर्किस्तान में गर्भस्थित भेड़ के बच्चे की खाल का कारबार बहुत होता है। योरोप में इस भाँति के भेड़ के बच्चे की खाल को अस्त्राचम (Astracham) कहते हैं। अफ़ग़ानिस्तान का ऊँट भारत के ऊँट से मोटा होता है; उत्तरांचल में ऊँट की पीठ पर दो कोहान होते हैं, इसे कूर्चा कहते हैं। अफ़ग़ानिस्तान का ऊँट औसत में ५ मन बोझा ले जा सकता है।

अफ़ग़ानिस्तान में ५ प्रकार के कृषक होते हैं यथा (१) पृथ्वी के सत्वाधिकारी जो स्वयं खेती करते हैं (२) प्रजा सत्व या जो लोग रुपया या पैदावार से कुछ भाग देकर खेती करते हैं; (३) बज़गर जो लोग छोटे छोटे किसान हैं भूमि की उपज का कुछ भाग देकर खेती करते हैं; (४) जो लोग तनख़ाह देकर खेती कराते हैं (५) दास—जो लोग अपने स्वामी की भूमि बिना वेतन पाए ही जोतते बोते हैं।

थोड़ी थोड़ी भूमि के सत्वाधिकारी लोग खेती करने में बहुधा परिवार वालों से सहायता लेते हैं, अथवा नौकरों द्वारा खेती कराते हैं। प्राचीन समय में यही रीति थी परन्तु अब कई कारणों से इसमें परिवर्तन हो गया है। अकाल अथवा अपव्यय के कारण बहुत से लोग भूमि बेच डालते हैं। घर का झगड़ा अथवा बेचने की इच्छा ही भूमि के दूसरे के पास जाने का प्रधान कारण है; सन्तानों में भूमि बँटने से थोड़ा थोड़ा भाग हिस्से में पड़ने से बहुधा लोग अपने भाई को अपना अंश यों ही या कुछ लेकर दे देते हैं। अमीर के कर्मचारी ही प्रायः भूमि ख़रीदते हैं क्योंकि उनके पास धन अधिक है। जो लोग सिँचाई की सुविधा कर सकते हैं वे ऊजड़ भूमि को ठीक बना कर उसके स्वामी हो जाते हैं। बहुत से आदमियों को अमीर से भी भूमि जागीर में मिलती है।

जो लोग भूमि पर कर देते हैं उनकी संख्या अधिक नहीं है। प्रायः वे लोग मध्यम अवस्था के होते हैं। ये लोग भूमि को बज़गर लोगों को उठा देते हैं। भूमि जोतने बोने का अधिकार २ वर्ष और अधिक से अधिक ५ वर्ष के लिये दिया जाता है। जहाँ बज़गर लोग खेती करते हैं वहाँ भूमि के मालिक को बीज, बैल और हल आदि देना पड़ता है। बज़गर केवल अपनी मेहनत लेते हैं। किसी किसी स्थान में बज़गर कुछ व्यय भी करते हैं परन्तु कुछ स्थानों में बीज छोड़ और सब व्यय बज़गर ही करते हैं। बज़गर को मिलने वाले भाग में भी व्यतिक्रम देख पड़ता है; किसी किसी स्थान में पैदावार का $\frac{1}{10}$ भाग तथा किसी किसी स्थान में $\frac{1}{2}$ भाग मिलता है। बज़गर मज़दूर लगा कर मेहनत कराते हैं और उनकी नियुक्ति १३ वीं मार्च से प्रारम्भ होकर ९ महीने के लिये होती है। किसी किसी स्थान में मज़दूरों को भोजन भी मिलता है और कुछ अनाज भी दिया जाता है।

शहर के मज़दूरों को भोजन और १०० दीनार दिये जाते हैं। दीनार साढ़े चार आने का होता है। शहर में गेहूँ का आटा रुपये का १६ सेर मिलता है परन्तु देहात में और भी सस्ता मिलता है।

अकरोबत कोटाल और कोहेदामन में पेंसिल बनने वाले पत्थर की खान है। हिरात के पूर्व में

कोयले की खान है। शिलाजीत ग़ज़नी से १० मील उत्तर में मिलती है। तैलाक्त पत्थर बन्दी तुर्किस्तान में देख पड़ता है। तौबा अधित्यका में रसांजन की खान है। कन्धार के ३ मील उत्तर सोने की खान है। कोहिस्तान की नदी में भी स्वर्ण मिलता है। हिन्दूकुश पहाड़ की पांजशिर उपत्यका में चाँदी की खान है। शाहमकसूद पहाड़ में ताँबे की खान है। कन्धार से ६० मील उत्तर नेश नामक स्थान में ताँबे की उत्तम खान मिली है। साहकानी पास में मुशी नामक स्थान की भूमि के ऊपरी भाग में ताँबा देख पड़ता है। घोड़बंद उपत्यका के फिंजल नामक स्थान में सीसे की खान दिखाई पड़ती है। कन्धार में निकल-चाँदी भी मिलती है। हिन्दूकुश के बहुत भागों में लोहे की खानें हैं। काबुल ग्रैार जलालाबाद के मध्यस्थान में चुन्नी पत्थर मिलता है। जामिनद्वार नामक स्थान के विश्लेषणकृत गन्धक पत्थर से फिटकरी तैयार होती है। हरसोट (Gypsum) बदख़शां ग्रैार हिरात में मिलता है। खानाबाद में नमक की खान है। ऐसबेस्टो भी अफ़ग़ानिस्तान में होता है। लेपिस लांजूली पत्थर की खान कोचका उपत्यका में मिलती है। कोटिग्रश्रु में स्वेत पत्थर ग्रैार वज़ीराबाद के निकट ख़्वाज बगीरा नामक स्थान में हरा पत्थर मिलता है।

अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में उत्तम रेशम तैयार होता है। हिरात ग्रैार कन्धार में भी रेशम बहुत तैयार होता है परन्तु वह अफ़ग़ान-तुर्किस्तान जैसा उत्तम नहीं होता। रेशम की रफ़्तनी कम है परन्तु रेशमी कपड़े की बहुत है। अफ़ग़ानिस्तान की दरी अब पहिले जैसी नहीं बनती परन्तु हिरात में दरी बहुत बनती है। यह अद्रकशा ग्रैार सबज्वार दरी कहलाती हैं। सिसतान, क्वेटा ग्रैार पेशावर में दरी की बिक्री बहुत होती है। हिरात प्रदेश में नमदे का काम भी होता है। अफ़ग़ानिस्तान के प्रायः प्रत्येक स्थान में भेड़ के चमड़े के पोस्तीन ग्रैार कोट तैयार होते हैं परन्तु काबुल के बने कपड़े अधिक मूल्य के होते हैं। अफ़ग़ानिस्तान में ही पोस्तीन की बिक्री बहुत है। ग्रैार पंजाब, बिलूचिस्तान तथा सिंध में भी इसकी बिक्री होती है। हिरात में हज़ारा जाति के लोग काकमा, बरक, एवं कुर्क तैयार करते हैं। काकमा ऊँट के कोमल ऊन से बनता है, इसका मूल्य भी बहुत होता है। बरक ग्रैार कुर्क पेड़ ग्रैार पहाड़ी बकरी के लोम से बनता है। कुर्क बरक से क़ीमती होता है। कन्धार में माला तैयार होती है जिनके दाम १ से १०० रुपये तक होते हैं। यह माला मक्के में बिकने को भेजी जाती हैं।

आज कल अग्न्यास्त्र तैयार करने को योरोपीय ढँग में योरोपीय कर्मचारियों की देख रेख में एक कार्यालय खोला गया है।

अफ़ग़ानिस्तान में भारत का व्यवसाय १९०४ ई० में १८० लाख रुपये का हुआ, जिसमें ८५ लाख की वस्तु भारत से गई। भारत से कपड़ा, चाय, नील, शक्कर, ग्रैार चमड़ा अफ़ग़ानिस्तान में जाता है। उधर से घी, रेशम, ऊन, पोस्तीन, चमड़ा ग्रैार दरी भारत में ग्राती हैं। पोयंदा नामक एक जाति ऊँट के द्वारा वाणिज्य की वस्तुएं एक स्थान से दूसरे स्थान को लेजाती है। पोयंदा कोई भिन्न जाति नहीं है, ऊँट से व्यवसाय करने वालों ही को यह नाम दिया जाता है।

वाणिज्य के लिये अफ़ग़ानिस्तान के नीचे लिखे मार्ग हैंः—(१) भारत से काबुल को ख़ैबर ग्रैार जलालाबाद होकर। (२) ग़जनी ग्रैार कन्धार को गोमल पास से। (३) क्वेटा से कन्धार। (४) बदख़शाँ से चित्राल होकर वाजूर ग्रैार जलालाबाद। (५) बुख़ारा से ग्राक्सस नदी के द्वारा काबुल (६) बुख़ारा से मर्व होकर हिरात। (७) ईरान से मशदद होकर हिरात, कन्धार ग्रैार काबुल जाने का मार्ग। उपर्युक्त मार्गों में ख़ैबर ग्रैार क्वेटे का मार्ग उत्तम है। वाणिज्य वस्तु गाड़ी द्वारा नहीं ले जाते। यह काम ऊँटों द्वारा होता है। लकड़ी को नदी से बहा लाते हैं।

१८७० ई० में अमीर शेरअलीख़ाँ ने टिकट-लगाने की प्रथा प्रचलित की थी। दो बरस तक टिकट का व्यवहार नहीं होता था परन्तु पैसे ले लिये जाते थे। १८७२ ई० में टिकटें छपीं। इसका दाम १ शाही (=१ आना), १ अब्बासी (=⅓ काबुली रुपया), २ अब्बासी तथा १ काबुली रुपया था। डाक से छोटे छोटे पार्सल भेजे जाते हैं। बड़े बड़े शहरों में चिट्ठियां बाँटी जाती हैं परन्तु अमीर के कर्मचारी जहाँ हों वहीं उनको चिट्ठी पहुँच जाती है। सप्ताह में दो बार डाक बँटती है। अफ़गानिस्तान में तार नहीं है परन्तु बाग़ बगीचों से अमीर के महलों तक टेलीफ़ोन हैं।

१८७२ में अफ़गान-तुर्किस्तान अकाल और विशूचिका में पीड़ित हुआ परन्तु कठिन अकाल यहाँ कभी नहीं हुआ। दुर्भिक्ष-समय में तुर्किस्तान में से नाज आदि लाकर दुर्भिक्ष मिटाया गया।

राजकार्यों में यह देश पूर्णरूप में स्वतंत्र है परन्तु देश से बाहिरी सम्बन्ध भारत सरकार पर अवलम्बित है। इस विषय में अमीर को कोई स्वतंत्रता नहीं। पहिले सिंहासनप्राप्ति रक्तपात के बिना नहीं होती थी। केवल अमीर हबीबुल्लाख़ाँ का सिंहासनारोहण ही शांति से हुआ। राजपरिवार के लोग काबुल के बाहर शासन करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति ही प्रधान शासक है अतः शासन-प्रणाली में भी विशेष अंतर है। अमीर अब्दुर्रहमान के समय से शक्ति केन्द्रीभूत होने पर शासनकर्ता लोगों की शक्ति घट गई और छोटे छोटे शासनकर्ताओं के नियुक्त होने से काबुल के साथ अमीर का सीधा सम्बन्ध स्थापित हुआ। जो सरदार शत्रु समझ पड़ते थे उन्हें फाँसी न देकर देशनिकाले का दंड दिया गया। केवल अफ़गान-तुर्किस्तान में उसका पुत्र सरदार गुलाम अलीजान नाम मात्र का शासन करता था। इसके सिवाय और सब कर्मचारियों के अमीर द्वारा नियुक्त होने से राजशासन में किसी भाँति विघ्न नहीं उपस्थित हुआ।

शक्ति केन्द्रीभूत करने के विचार से काबुल में बहुत से दफ़्तर स्थापित हुए। कार्य चलाने के लिये पृथक् पृथक् दफ़्तरों में अमीर के भाई नियुक्त हुए। ये लोग भी अमीर के अधीन हैं। छोटे छोटे कार्य में भी अमीर की अनुमति लेना आवश्यक होता है।

राजकार्य चलाने के लिये अफ़ग़ानिस्तान ६ प्रदेशों में विभक्त है (१) अफ़गान-तुर्किस्तान, (२) बदख़शाँ (३) हिरात (४) कन्धार (५) फ़र्रा (६) काबुल। अमीर स्वयं काबुल का शासन करते थे परन्तु अब वह नायबउल-हुकम अर्थात् शासनकर्ता के अधीन रक्खा गया है। प्रत्येक प्रदेश ज़िलों में बँटा है।

काबुल के दरबार में अमीर स्वयं राज्यकार्यादि देखते हैं। इसमें विचार विभागों की अपील होती है। प्रत्येक प्रदेश और ज़िले के शासनकर्ताओं को दीवानी तथा फ़ौजदारी के अधिकार प्राप्त हैं। इन लोगों की अदालत मुहकमाई-हाकिम कहलाती है। इनके नीचे काजी की अदालत है जो मुहकमाई-सरह नाम से ख्यात है। प्रत्येक काजी का एक २ सहकारी है जिसे मुफ़्ती कहते हैं। जिस विषय पर काजी और मुफ़्ती का मतभेद होता है वह काबुल के खती -मुल्ला के निकट मीमांसा को भेजा जाता है। अदालत के नियम आदि अब्दुर्रहमान ने बनाये थे और वर्तमान अमीर भी उसी के अनुयायी हैं। उस अदालत की आईन पुस्तक चाई-हुक्मती नाम से ख्यात है। काजी और मुफ़्ती लोगों की आईन पुस्तक का नाम असास-उल-हुज्जत है। यह मुसलमान आईन (शर) के आधार पर लिखी गई है। साधारणतः मुसलमान आईन से शासित विषय मात्रही हाकिम लोग काजी की अदालत में भेजते हैं। विद्रोह, राजकोश की चोरी, जाल, राजकर्मचारियों का घूस लेना, राजा या राजपरिवार के विरुद्ध नालिश आदि की मीमांसा अमीर स्वयं करते हैं। ये सब विषय आईन पुस्तक में लिखे न रहने पर भी अमीर अपनी राय के मुताबिक काम करते हैं और अभियोग प्रमाणित होने पर दोषी को प्राणदंड होता है। काबुल के बाहर व्यभिचार, चोरी आदि के

अभियोग हाकिम काजी शरह आईन के अनुसार निपटाते हैं। केवल काबुल में इसकी मीमांसा अमीर स्वयं करते हैं। चोरी पेशावालों के लिये आईन बड़ा ही कठोर है। हाथ पाँव काटने से मृत्युदंड तक दिया जाता है। हाकिम या काजी अपराध शरह आईन के अनुकूल होने से मृत्यु दंड तक की आज्ञा दे सकते हैं परन्तु अमीर की आज्ञा की आवश्यकता तब भी होती है। वाणिज्यादि विषयक विवाद शरह आईन के अन्तर्गत नहीं है हाकिम इन विषयों में पञ्चायत से .फैसला कराते हैं। आज कल काबुल में निम्न लिखित अदालतें हैं।

नायब-उल-सुलतानस, समुईन-उल-सुलतानस, सरियत और कोतवाली। हाकिम लेगों के .फैसले की अपील अमीर के पास होती है। दीवानी के मुक़द्दमों के लिये अब टिकटदार स्टाम्पों का चलन हुआ है। इसमें निवेदन लिखकर अमीर के पास भेजना होता है।

अफ़ग़ान राज्य की आय जिन मदों से होती है वे ये हैं—कर, आमदनी तथा रफ़्नी पर टैक्स, फल के बग़ीचों पर टैक्स, चराई का टैक्स (अर्थात् ४० पशुओं में से १ पशु पर टैक्स लगता है, जिसे छहालो-अक या जकत कहते हैं), टिकट बिक्री, सरकारी बाज़ारों का एकाधिपत्य, जज़िया (यह टेक्स जो लोग मुसलमान नहीं हैं उन पर लगता है) एवं भारत सरकार से दिये जाने वाले १८ लाख रुपये। इसके अतिरिक्त प्रादेशिक शासनकर्ता अमीर को सालाना भेंट भेजते हैं। उससे भी बहुत आय होती है। पचास साल में अफ़ग़ानिस्तान की आय चैागुनी हो गई। १८५६ ई० में अफ़ग़ानिस्तान की आय ३० लाख वार्षिक थी, दूसरे साल दोस्त मुहम्मद ने पेशावर दरबार में ३५ लाख कही थी। १८६९ में शेरअली के समय आय अँगरेज़ी रुपये में ७० लाख थी। १५ साल बाद वह काबुली रुपये में १ करोड़ रुपये हो गई। १८८५ ई० में अब्दुर्रहमान ने अफ़ग़ानिस्तान की आय अँगरेज़ी रुपये से १ करोड़ निश्चित की थी। व्यय आय के भीतर ही होता है और बचा हुआ धन काबुल में भेजा जाता है। लोगों का विश्वास है कि काबुल में संचित धन का एक बड़ा कोश है।

भूमिकर वार्षिक उपज पर लिया जाता है। सींचने की सुविधा और असुविधा देखकर कर लगाया जाता है। जिस भूमि में सिंचाई की व्यवस्था है उसमें उपज का तिहाई कर में लिया जाता है। जो झरनों से सींची जाती है उसकी उपज का १/१० भाग कर में जाता है। जो भूमि कारेज प्रणाली से सींची जाती है उसका कर उपज का १/१० भाग लिया जाता है परन्तु करेज यदि सरकारी हो तो उसका कर अधिक होता है। जो भूमि वृष्टि जल के भरोसे ही रहती है उस पर कर १/१० भाग है। फल और शाक भाजी के बग़ीचों पर प्रति ६० वर्ग गज़ पर ७॥) से ९) तक कर लगता है। यदि और अधिक कर न देना पड़ा तो कृषक की दशा अच्छी रहती है। परन्तु क्षुधार्त सेना और धनिकों के नौकर प्रायः खेतों से अनाज ले जाते हैं। शहर के लोगों को इस विषय में अधिक डर नहीं है तथापि प्रजा कर-भार से पीड़ित है। वर्तमान अमीर ने इस कर-भार को कम कर दिया है।

अमीर अब्दुर्रहमान ने कुछ स्वर्ण-मुद्रा भी बनवाये थे परन्तु उनका प्रचार अधिक नहीं हुआ। १८९० ई० में काबुल में एक टकसाल स्थापित हुई। निम्नलिखित मुद्रा देश में प्रचलित हैं:—पाँच पाई = १ शाही (ताम्र मुद्रा); २ शाही = सन्नार (रौप्यमुद्रा); २ सन्नार = १ अबासी अथवा तेगा; ३ सन्नार = १ अन; २ अन = १ रुपया; १५ रुपये = १ काबुली स्वर्ण तिला।

अमीर अब्दुर्रहमान ने ५ काबुली रुपयों का १ बड़ा मुद्रा बनवाया था परन्तु उसका चलन नहीं हुआ। भारतीय रुपये के हिसाब से काबुली रुपये का मूल्य १३॥ से ८ आने तक कम है। जिसमें दाम और कम न हो इस विषय का अमीर विशेष ध्यान रखते हैं।

साधारण तौल इस भाँति है:—काबुल में—१६ खर्द = १ चारक; ४ चारक = १ सेर (७ सेर) भारतीय १३॥ छटांक के बराबर है); ८ सेर = १ मन; १० मन = १ खरवार (१५ मन = २७॥ भारतीय सेर अँगरेज़ी तौल)।

कन्धार में—२ मिसकल = १ सेर (४$\frac{2}{7}$ तोला भारतीय तौल); ४० सेर = १ मन (४ सेर २५ तोला भारतीय); १०० मन = १ खरवार (१० मन ३१ सेर ८ तोला भारतीय)।

हिरात प्रदेश की तौल कन्धार की ही भाँति है। अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में काबुल की तौल प्रचलित है। और स्थानों में मज़ारीशरीफ़ की तौल प्रचलित है:—

१ मज़ार सेर = १$\frac{1}{5}$ काबुली सेर (१४ अँगरेज़ी भारतीय सेर); १६ सेर = १ मज़ार मन (५ मन २४ सेर अँगरेज़ी); ३ मन = १ मज़ार खरवार (१६ मन ३२ सेर अँगरेज़ी)।

कन्धार में नाप के लिये गज़ प्रचलित है। गज़ दो प्रकार के होते हैं (१) गज़ी शाही, (२) गज़ी रिआयती। नापने में पहिले का ही व्यवहार होता है। दूसरा मकान और भूमि आदि नापने के काम में आता है। एक जरीब ६० × ६० गज़ी रिआयती के बराबर है। हिरात में भूमि जरीब से नापी जाती है। जरीब = ६० × ६० गज़; और १ गज़ = लगभग १ अँगरेज़ी गज़ के है। बड़े बड़े भूमिखंड नापने में जौज़ का व्यवहार होता है। इसका भी व्यतिक्रम गज़ की ही भाँति है। कहीं कहीं अस्सी जरीब का और कहीं कहीं सौ या उससे भी अधिक का होता है। अफ़ग़ान-तुर्किस्तान में लम्बाई की नाप यह है—१६ तसू (१$\frac{1}{2}$ इंच) = १ क़दम (२८ इंच); १२००० क़दम = १ शंग अथवा फ़रसक (५ माईल ५३३$\frac{1}{3}$ गज़)। लम्बाई नापने का एक और पैमाना कुलाच है। यह ६ फ़ीट का होता है।

अफ़ग़ान लोग भारतीय सेनादल में प्रविष्ट होते हैं। ये लोग अफ़ग़ानिस्तान से भरती नहीं किये जाते परन्तु जो लोग अँगरेज़ी राज्य में आकर नौकरी करते हैं वेही लिये जाते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान की पुलिस शहर के कोतवाल के अधीन है। जेलख़ाने भी कोतवाल के अधीन रहते हैं। क़ैदियों को लम्बी सज़ा नहीं दी जाती। जो क़ैदी सरकार से भोजन पाते हैं उन्हें काम करना पड़ता है। जो लोग अपने घर से खाते हैं वे केवल नज़रबन्द रक्खे जाते हैं।

लोगों की शिक्षा पुरानी भाँति की है। मुल्ला लोग स्वयं कुसंस्कारापन्न और अबोध होने पर भी जन साधारण के शिक्षक हैं। भारत में जैसे शिक्षा के समय बालक इकट्ठे होकर शरीर का ऊपरी भाग हिला कर स्वर के साथ चिल्ला कर पढ़ते हैं अफ़ग़ानिस्तान में भी वैसा ही है। सब से पहिले क़ुरान पढ़ाया जाता है। पढ़ना लिखना जान लेने और क़ुरान पाठ कर सकने पर ही शिक्षा समाप्त हो जाती है। जो मुल्ला अधिक शिक्षित हैं वे थोड़ा सा गणित भी जानते हैं। उत्तम स्कूल या कालेज देश में नहीं हैं जिसमें देश के बालकों को शिक्षा प्राप्त हो, इसलिये अमीर ने अनिवार्य शिक्षा का प्रचार किया है। अमीर ने भारत से शिक्षक लेजाकर काबुल में मदरसा (College) स्थापित किया है।

चिकित्साव्यवसायी पुरुषों को अफ़ग़ानिस्तान में हकीम कहते हैं। वे लोग निदान, शवच्छेद अथवा अस्त्रचिकित्सा आदि कुछ नहीं जानते। डाक्टर मिस हैमिल्टन नामक एक योरोपियन महिला अमीर की सेवा में थीं। वर्त्तमान अमीर १ लेडी डाक्टर और कुछ भारतीय सब-असिस्टेंट सरजनों को नौकर रखते हैं।

—:०:—

स्वर्गवासी बाबू देवकीनन्दन खत्री।

जिनके उपन्यासों की बदौलत आज हिन्दी-पुस्तकालयों में छोटे छोटे लड़के उपन्यासों की खोज में हैरान दिखाई पड़ते हैं, कचहरी के मुंशी लोग "चन्द्रकान्ता की क़िस्म की कोई किताब" मित्रों से माँगते फिरते हैं, बहुत से नवयुवक लेखकों और सम्पादकों की कोटि में घुसना चाहते हैं और घुसे हैं उन्हीं बाबू देवकीनन्दन खत्री का शरीरान्त १ अगस्त १९१३ को काशी में हो गया। हिन्दी-पठित समाज में उनका शोक जैसा चाहिए वैसा मनाया गया। नागरीप्रचारिणी सभा के हाल में उनका शोक मनाने के लिए पं० बालकृष्ण भट्ट के सभापतित्व में काशी-निवासी सज्जनों की एक बड़ी सभा हुई जिसमें कुछ कविताएं पढ़ी गईं और बाबू साहब के गुणों का दुःख के साथ स्मरण किया गया। सभापति महाशय ने अपने अनुभव-पूर्ण व्याख्यान में यह अच्छी तरह दिखलाया कि अपनी अनोखी प्रतिभा के बल से बाबू साहब ने हिन्दी के लिए क्या किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी पुस्तकों ने हिन्दी-पाठकों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी की। आरम्भ-काल में नागरीप्रचारिणी सभा का कार्य्य भी उन्होंने कुछ सँभाला था। सभा में सब लोगों की ओर से पंचत्व-प्राप्त बाबू साहब के लिए अत्यंत शोक और उनके दुखी परिवार के साथ गहरी सहानुभूति प्रकट की गई।

—:०:—

परलोकवासी राजा साहब भिनगा।

इधर के पुराने राज-वंशों में ऐसे बहुत कम श्रीमान् निकलेंगे जिनमें शिक्षित-समाज के उद्योगों में योग देने की प्रवृत्ति वा क्षमता हो। अधिकांश तो अशिक्षा के कारण इन उद्योगों से परिचित ही नहीं। वे नहीं समझते कि देश की उन्नति से उनका भी कोई सम्बन्ध है। पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि इन राजाओं में से कोई इन उद्योगों की ओर ध्यान दें तो बहुत शीघ्र सफलता हो सकती है। सार्वजनिक अनुष्ठानों में द्रव्य की सहायता तो साहु, महाजनों तथा और और साधारण लोगों से भी मिल सकती है पर ऐसे राजाओं की आर्थिक सहायता के साथ ही लाखों मनुष्यों पर प्रभाव पड़ता है जो इनके उच्च पद के कारण उनसे लगाव, वा वंश-प्रतिष्ठा के कारण इन पर श्रद्धा रखते हैं।

राजा साहब भिनगा कैसे सुशिक्षा-सम्पन्न और विद्योत्साही थे यह बात देश में छिपी नहीं है। काशी का क्षत्रिय हाई स्कूल उनके देश-कल्याणकारी दान की घोषणा कर रहा है। इस सभा का ग्रन्थ-प्रकाशन-विभाग कभी उनके द्रव्य से ख़ाली न रहा। बराबर उनकी सहायता से किसी न किसी उपयोगी पुस्तक में हाथ लगा रहा और अब तक लगा है। उनकी सहायता से सभा ने ये ये पुस्तकें लिखवाईं और लिखवा रही है—

(१) परिचर्य्या-प्रणाली
(२) वनिता-विनोद
(३) यूरोपीय दर्शन
(४) प्रबोध-चन्द्रिका
(५) राज्यप्रबन्ध-शिक्षा
(६) पूर्वीय दर्शन का इतिहास (छप रहा है)
(७) अमिताभ (Light of Asia का पद्यानुवाद—हो रहा है)
(८) अध्यात्मविद्या (Deussen's Metaphysics का अनुवाद—छप रहा है)

ऐसे सहायक श्रीमान् के परलोकवास से सभा को जो वेदना हुई वह सभा ही जानती है। जुलाई में एक बड़ी भारी शोक-सभा हुई जिसके सभापति रेवरेंड ई० ग्रीव्ज़ थे। पं० रमाशंकर मिश्र एम० ए० (रिटा० कलक्टर), आनरेब्ल बा० मोतीचंद तथा और बहुत से प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे। ग्रीव्ज़ साहब ने परलोकवासी राजा साहब के अनेक गुणों की प्रशंसा की। इसके उपरान्त पं० केशवदेव शास्त्री ने राजा साहब के विषय में अपने अनुभव बड़े विस्तार के साथ बतलाए। उन्होंने और बहुत सी बातों के साथ यह भी कहा—"जो कार्य्य राजा साहब के चित्त में अच्छा जँच जाता था उसमें सहायता करने के लिए वे सदा प्रस्तुत रहते थे, पर जिस कार्य्य को वे उपयोगी नहीं समझते थे लाख कहने पर भी वे उसकी ओर ध्यान नहीं देते थे। विद्याप्रचार आदि के उद्देश्य से राजा साहब गुप्त रूप से भी

बहुत दान करते थे। प्रायः ऐसा हुआ है कि कोई विद्वान् या उद्योगी उनके पास गया है और उन्होंने चलते समय उसकी जेब में १००)—२०) का नोट डाल दिया है।" सर्व सम्मति से सभा ने यशस्वी राजा साहब के परलोकवास पर अत्यन्त शोक और उनके परिवार के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट की।

राजा साहब को अशिक्षितों और स्वार्थ-साधकों से बड़ी घृणा थी। वे इधर बहुत दिनों से एक प्रकार से एकान्त-वास करते थे। जन साधारण से, विशेष कर काशी के पंडितों से, मिलना जुलना पसन्द नहीं करते थे। इसी से पुराने ढर्रे के लोगों को उनसे सहानुभूति कम रहती थी। वे चुने चुने शिक्षितों से ही मिलते जुलते थे और उन्हीं के उद्योगों में सहायक होते थे।

—:०:—

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के बीसवें वार्षिक अधिवेशन में

सभापति का भाषण।

शी-नागरी-प्रचारिणी सभा का बीसवाँ वार्षिक अधिवेशन सोमवार ता० ४ अगस्त को हुआ था। इसका कार्य-विवरण अन्यत्र प्रकाशित है। सभापति पंडित श्यामविहारी मिश्र एम० ए० इस अवसर पर उपस्थित न हो सके। परंतु उन्होंने सभा के गत २० वर्षों के कार्य पर अपना भाषण लिख भेजा था जो उस दिन सभा में पढ़ा गया और अब यहाँ प्रकाशित किया जाता है।—

प्रिय महाशयो!

बड़े आनन्द का विषय है कि आज हम लोग काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का बीसवाँ जन्मोत्सव मनाने को एकत्रित हुए हैं। सभा ने अभी थोड़े ही दिन हुए एक मंतव्य पास किया है कि उसका गत वर्ष का सभापति वार्षिक अधिवेशन के समय आप लोगों की सेवा में कुछ अवश्य कहे। उसी मंतव्य के आधार पर मैं आप महाशयों का कुछ अमूल्य समय लेने का साहस करता हूँ। ऐसे अवसर पर ऐसा करना किसी कृतविद्य और प्रसिद्ध हिन्दी-तत्त्वज्ञ का काम था और यदि ईश्वर की कृपा से इस दिन गोलोक-वासी पंडितवर मोहनलाल विष्णुलालजी पंड्या वर्तमान होते तो शायद आप लोग उनका महत्त्व-पूर्ण व्याख्यान सुन कर प्रसन्न होते। क्योंकि गत वार्षिक अधिवेशन में उन्हीं महानुभावजी का चुनाव सभापति के उच्च पद के लिए हुआ था। पर काल की कराल गति से थोड़े ही दिनों पीछे उनका वैकुंठवास हो गया और सभा के शेष अधिकारियों ने मुझ ऐसे अनभिज्ञ को उक्त पद ग्रहण करने पर बाधित किया। मैं अपनी अयोग्यता को भली भाँति जानता था, और वह उक्त अधिकारियों पर भी अवश्य ही विदित थी क्योंकि इसी कारण उन्होंने मुझे आग्रहपूर्वक लिख भेजा कि तुम्हारी इस मामले में एक भी न सुनी जायगी और तुम्हें विवश यह पद स्वीकार ही करना पड़ेगा। अतः मुझे वह आज्ञा शिरोधार्य ही करनी पड़ी। अब आप महाशयों से यही प्रार्थना है कि मेरी भूलों और त्रुटियों को बिसार कर जो दो चार बातें मैं आप लोगों के सम्मुख निवेदन करता हूँ उन्हें सुन लेने की कृपा करें।

इस सभा का जन्म सन् १८९३ के जनवरी अथवा फ़रवरी मास में "कालेज के कतिपय उत्साही विद्यार्थियों" द्वारा हुआ था। "कालेज" से तात्पर्य क्वींस कालेज, बनारस से है क्योंकि सेंट्रल हिन्दूकालेज का उस समय जन्म तक न हुआ था। उन "उत्साही विद्यार्थियों" में से केवल तीन महाशय ऐसे हैं कि जो आज दिन तक सभा के सभासद बने हुए हैं और उसकी यथासाध्य सेवा करते जाते हैं। अवश्य ही आप लोगों को उनके शुभ नाम जानने की उत्कंठा होगी, अतः सुनिए। उनमें सबसे पहिले सभा के स्तम्भस्वरूप मान्यवर बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० हैं जो सदा ही इस सभा के मानो प्राण बने रहे हैं। इन्होंने सभा का जितना उपकार किया है उतना किसी से अब तक नहीं हो सका है, ऐसा कहने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं होता। सभा ही क्यों वरन मुख्यांश में उसके द्वारा बाबू साहब ने जो सेवा हिन्दी-भाषा एवं नागराक्षरों की कर दिखाई है उतनी शायद भारतेन्दु जी के पीछे दो एक महानुभावों को छोड़ और किसी से भी न बन पड़ी होगी। इन्हीं "उत्साही विद्यार्थियों" में से दूसरे पं० रामनारायणजी मिश्र बी० ए० हैं जो सभा का सदा से बराबर उपकार और उसकी सेवा करते आए हैं और अब

तक कर रहे हैं। तीसरे महाशय का नाम बा० शिवकुमारसिंह है और इनकी हिन्दी-सेवा और इनका उत्साह परम प्रशंसनीय है। इस त्रिमूर्ति का हिन्दी और उसके रसिकों पर भारी ऋण है और हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि इनके नाम हिन्दी के इतिहास में चिर काल तक अचल रहेंगे। ईश्वर इन्हें चिरायु और सुयशी करे!

यद्यपि सभा का वास्तविक जन्म सन् १८९३ के प्रारम्भ में ही हो चुका था तथापि इसके नियमादि बनने और नियत रूप में हो जाने के कारण इसका जन्म-दिन १६ जुलाई १८९३ माना गया है। कुछ दिनों तक यह इधर से उधर मँगनी के मकानों में होती रही। इसका पहिला अधिवेशन नार्मल स्कूल बनारस में हुआ था। फिर किराए के मकानों में कुछ काल गुज़र किया गया और अंत को १९०१—०२ में जब कि भाग्यवश में भी काशी में ही प्रायः डेढ़ साल तक रहा था, सभा के स्थायी कोष के लिए चन्दा होने लगा और प्रायः तभी से सभा के इस विशाल भवन के बनने का सूत्रपात हुआ कि जिसे आप लोग इस समय सुशोभित कर रहे हैं। तारीख़ १८ फ़रवरी १९०४ को इसे हमारे भूतपूर्व छोटे लाट सर जेम्स ला टूश महोदय ने बड़े समारोह के साथ खोला था और तब से इसमें कई प्रतिभाशाली महानुभाव पदार्पण कर चुके हैं जैसे कि सर जान हिवेट, श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर, सर कृष्ण गोविन्द गुप्त इत्यादि इत्यादि। इस सभा के संरक्षकों में श्रीमान् महाराजा साहब सिंधिया (ग्वालियर), श्रीमान् महाराजा साहब रीवाँ, श्रीमान् महाराजा गैकवाड़ बहादुर (बरोदा), और श्रीमान् महाराजा साहब बीकानेर हैं तथा हाल में निश्चय किया गया है कि तीन हिन्दी के अन्य प्रेमी महाराज इसके संरक्षकों में सम्मिलित किए जाँय अर्थात् श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर, अलवर, व बनारस। इन बातों से सभा का महत्त्व प्रगट होता है क्योंकि साधारण सभा सोसाइटियों में न तो ऐसे भव्य पुरुष ही पदार्पण कर सकते हैं और न ऐसे भारी नृपतिगण उनके संरक्षक होना स्वीकार करेंगे।

अब सभा को स्थापित हुए बीस वर्ष पूरे हो चुके हैं अतः उचित प्रतीत होता है कि उसके इतने दिनों के संक्षिप्त हाल का आप महाशयों को थोड़े ही में दिग्दर्शन कराने का कुछ प्रयत्न किया जाय। जैसे बीस वर्ष का लड़का युवा पुरुष कहलाने का अधिकारी हो जाता है उसी प्रकार जो सभा इतने दिनों सफलतापूर्वक अपना काम चला कर आगे को और भी अधिक उत्साह के साथ बढ़ रही हो उसे अवश्यही आप लोग समुचित प्रोत्साहन और सहायता देंगे कि जिसमें उसे अपनी मातृभाषा की सेवा जैसे पवित्र कर्तव्य के पालन करने में विशेष कृतकार्यता हो सके।

१—इस सभा के सभासदों की संख्या निरंतर बढ़ती ही आई है और इस बीस वर्ष के बृहद् समय में ऐसा एक साल भी न हुआ कि पहिले की अपेक्षा उक्त संख्या में न्यूनता हुई हो। केवल यही नहीं बरन सभासदों की गणना प्रत्येक वर्ष बढ़ती ही गई है। प्रथम वर्ष उनकी संख्या ८२ थी और फिर क्रम से प्रति वर्ष १४५, १४७, २०१, २२२, २४७, २७०, २९२, ३९१, ४५८, ५७६, ६६२, ६७७, ६८१, ७०४, ७४२, ७६६, ९९०, १३२२, और १३४१ रही है। इससे स्पष्ट है कि हर साल कुछ न कुछ वृद्धि अवश्य हुई और किसी किसी वर्ष में तो बड़ी ही संतोषजनक बढ़ती हुई है जैसे नवें, ग्यारहवें, १८ वें और विशेष करके १९ वें साल, अर्थात् सन् १९०१—०२, १९०३—०४, १९१०—११, और १९११—१२ में। कुल मिला कर २० वर्ष में ८२ से १३४१ सभासद हो जाना सभा के लिए अभिमान और गौरव की बात है। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ महाशय केवल चन्दा न देने के कारण समय समय पर इस्तीफ़े दिया करते हैं पर समझने की बात है कि बिना आय के सभा अपने उद्देश्यों का पालन कैसे कर सकती है? ऐसी दशा में उसके कर्मचारियों को चन्दा के लिए तक़ाज़ा अवश्यही करना पड़ेगा और यदि इसीसे चिढ़ कर कोई इस्तीफ़ा देने दौड़े तो यही कहना पड़ेगा कि ऐसे महाशयों से सभा का जितनी जल्द पिंड छूट जाय उतनाही अच्छा। कभी कभी कोई कोई महाशय मतभेद अथवा अन्य कारणों से भी ऐसा करते हैं पर इसमें भी सभा विवश है क्योंकि उसकी सारी कार्रवाई अधिक सम्मति पर ही चलती और चल सकती है। यदि आप सभा में न तो कभी आने का कष्ट उठावें और न वार्षिक अधिवेशन तक के लिए किसी मित्र के नाम अपना प्रतिनिधि पत्र ही भेज कर उसके द्वारा सभा पर अपनी सम्मति प्रगट करने की कृपा करें और फिर भी अपनी इच्छा के प्रतिकूल सभा के किसी सर्वसम्मति अथवा अधिक सम्मति

द्वारा निर्धारित कार्य से रुष्ट होकर इस्तीफ़ा देने दौड़ें तो इसमें सभा या किसी व्यक्ति विशेष का क्या दोष है ? यदि आप मुझे क्षमा करें तो मैं यही कहने का साहस करूँगा कि इसमें आपही के निरुत्साह और अनुचित क्रोध का दोष होगा। कुछ महाशय ऐसे अहंकारी और क्रोधी होते हैं कि यदि वे एक ओर हों और सारी दुनिया दूसरी ओर हो तो भी डेढ़ अक़ु वाली कहावत के अनुसार उन्हीं की बात अवश्य ही ठीक मानी जानी चाहिए नहीं तो वे बिना बिगड़े न रहेंगे। निदान ऐसी दशाओं में सभा कुछ भी नहीं कर सकती। वह तो यही चाहती है कि उसके सदस्यों की सभी बातें चलें पर अधिक सम्मति पर चलना उसे अनिवार्य है। आनन्द का विषय है कि सब प्रकार के इस्तीफ़ों और काल गति से अनेक सभासदों के न रहने पर भी उनकी संख्या बराबर बढ़ती ही चली जाती है और आशा है कि दिन दिन उसकी उत्तरोत्तर उन्नति ही होती जायगी। परन्तु इन सब बातों पर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दी जाननेवालों की संख्या हज़ारों लाखों पर नहीं बरन करोड़ों पर है और उस हिसाब से हिन्दी की इस मुख्य सभा के सदस्यों की संख्या क्या दस बीस हज़ार भी न होनी चाहिए ? यदि प्रत्येक सभासद यह प्रतिज्ञा करले कि जैसे बनेगा हम सभा के लिए दश नए सदस्य ढूँढ़ निकालेंगे तो सालही दो साल के भीतर उनकी संख्या वास्तव में बहुत अच्छी हो सकती है और वैसी दशा में सभा भी वे काम करके दिखला सकती है कि जिनसे हिन्दी का आसन सचमुच ऊँचा हो जाय।

२—सभा के आय-व्यय का हिसाब देखने से वैसा संतोष नहीं होता जैसा कि उसके सभासदों के ब्योरे से। प्रथम दो वर्षों का हिसाब रिपोर्टों में नहीं लिखा है और न यह बात ऐसे महत्त्व की है कि उसकी जाँच परताल इस समय की ही जाय पर इतना विदित है कि दूसरे वर्ष के अंत में प्रायः २६४) की बचत रही थी। उसके पीछे क्रम से प्रति वर्ष के आय-व्यय का ब्योरा यों है—

सन् १८९५—९६	आय प्रायः ६८२)	व व्यय प्रायः ६८३)
१८९६—९७	,, २७५)	,, ४३३)
१८९७—९८	,, ८९५)	,, ५९८)
१८९८—९९	,, ६५२)	,, ६९२)
१८९९—१९००	,, १६२९)	,, १२७३)
१९००—०१	,, २५३२)	,, २१३९)
१९०१—०२	,, ५१२६२) ×	,, ३७३९)
१९०२—०३	,, ७४४०) ×	,, १३५०५) ×
१९०३—०४	,, ११९७०) ×	,, १३८२८) ×
१९०४—०५	,, १०८०६) ×	,, १२९४८) ×
१९०५—०६	,, ७८११)	,, ८१४५)
१९०६—०७	,, ७८२४)	,, ८६५६)
१९०७—०८	,, ७०८१)	,, ७२२६)
१९०८—०९	,, १४७६९) ×	,, ९९०६)
१९०९—१०	,, १०४३५)	,, ९७६६)
१९१०—११	,, ९८१५)	,, ९४८५)
१९११—१२	,, ९७२२)	,, ९९२०)
१९१२—१३	,, १६४६२) ×	,, १५९५७) ×

इस ब्योरे से विदित होगा कि सन् १९०१—०२ से सभा की आय में अच्छी उन्नति होने लगी और जिन वर्षों में विशेष आय हुई अथवा अधिक व्यय हुआ उन अंकों के सामने गुण का चिह्न (×) लगा दिया गया है। पहिले तो स्थायी कोष स्थापित होने के कारण आय में तथा सभा-भवन के बनने से व्यय में विशेषता हुई और १९०८—०९ से हिन्दी-कोश (शब्दसागर) के सम्बंध में विशेष चन्दा एवं व्यय होना प्रारम्भ हुआ। हर्ष का विषय है कि भवन कई वर्ष हुए पूरा हो गया और शब्दसागर का काम उत्तमता से चल रहा है। सबसे अधिक संतोष की बात यह है कि इस वर्ष बाबू श्याम-सुन्दरदास तथा बा० गौरीशंकरप्रसाद एवं सभा के कुछ अन्य उत्साही सदस्यों और शुभचिन्तकों के उद्योग से सभा को ऋण-मुक्त करने के लिए एक विशेष चन्दा हुआ और हो रहा है कि जिस से उसके सिर का प्रायः आठ नौ वर्ष का लदा हुआ ऋण अब दूर होता देख पड़ता है। कदाचित् आप लोग यह स्वीकार करेंगे कि जिस सभा ने इतने दिनों से हिन्दी और तद्द्वारा आप लोगों की सेवा का बीड़ा उठा रक्खा है और अपने उद्देश्य में बहुत कुछ कृतकार्यता भी प्राप्त की है उसका केवल ऋण-मुक्त होना ही अलम् नहीं। अब उसका एक स्थायी कोष दृढ़तापूर्वक स्थापित ही हो जाना चाहिए

जो कम से कम एक लाख रुपये का अवश्य हो। ऐसा हो जाने से सभा की जड़ दृढ़ हो जायगी और उसका काम उत्तमता से चलता रहेगा। इतने दिनों में ऋण इत्यादि को छोड़ कर उसकी कुल २० वर्ष की आय डेढ़ लाख रुपया भी नहीं हो सकी है। इस पर विचार करने से हम लोगों को शायद कुछ लज्जा बोध होगी। अस्तु अब तक जो हुआ सो हुआ आगे के लिए हमें कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

(३) सभा जिस उत्साह से अपना काम करती आई है सो आप लोगों से छिपा नहीं है। पहिले ही साल उसके ३६ अधिवेशन हुए और उसके पीछे प्रतिवर्ष क्रम से ३१, २८, १४, २७, २७, २८, ३०, ३१, ३२, ३७, ३३, ३१, २७, ३१, २९, २९, २८, २६, और २४ अधिवेशन हुए। इन में सभा के साधारण अधिवेशन २८१ और असाधारण २९ हुए तथा प्रबन्धकारिणी-समिति के २६७ हुए। इस तरह कुल मिला कर ५७७ अधिवेशन २० साल में हुए जिसका वार्षिक परता प्रायः २९ अधिवेशनों का पड़ता है जो कदापि कम नहीं कहा जा सकता। आप लोग देखते होंगे कि हमारे देश में अनेक सभाएँ स्थापित होती रहती हैं पर छः मास के पीछे उनके अधिवेशनों का पता कठिनता से लगता है। नागरी-प्रचारिणी सभा के कार्य-संचालकों का उत्साह और उनकी कार्य-परायणता का उसके २० वर्ष के निरंतर अधिवेशनों से ही बहुत कुछ प्रमाण मिल जाता है। इतने दिनों का परता लगाने पर प्रायः हर बारहवें तेरहवें दिन एक अधिवेशन का होना पाया जाना कोई साधारण बात नहीं है और हम दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि समस्त भारतवर्ष में ऐसी बहुत सभाएँ न निकलेंगी कि जिनकी ऐसी कार्यपटुता सिद्ध हो सके। हमारा आप लोगों से फिर यही सविनय निवेदन है कि उसे और भी कार्यदक्षता प्रदर्शित कर सकने की सामग्री (अर्थात् आवश्यक धन) का प्रबंध आप महाशयों को अवश्य कर देना चाहिए।

(४) इसके प्रधान कर्मचारी अधिक नहीं बदलते रहे हैं और नीचे दिया हुआ ब्योरा शायद आप लोगों को रुचिकर हो—

सन्	नाम सभापति का	नाम मंत्री का
१८९३-९४-९५	बा० राधाकृष्ण दास,	बा० श्यामसुंदर दास बी.ए.
१८९५-९६	रायबहादुर पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम ए०	वही
१८९६-९७-९८	वही	बा० राधाकृष्णदास
१८९८-९९-१९००	,,	बा० श्यामसुंदरदास बी.ए.
१९००-०१	पद खाली रहा	वही
१९०१-०२	रा० ब० पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम ए०	,,
१९०२-०३ से १९०५-०६ तक	महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी	,,
१९०६-०७	वही	बा० राधाकृष्णदास
१९०७-०८-०९	म. म. पं० सुधाकर द्विवेदी,	बा० जुगुलकिशोर
१९०९-१०	,,	बा० गौरीशंकरप्रसाद बी० ए० एलएल०बी०
१९१०-११-१२	म. म. पं० आदित्यराम भट्टाचार्य एम० ए० और पं० गौरीशंकर हरिचंद ओझा	वही तथा पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०
१९१२-१३	पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या (प्रायः ४ मास) बाद को मैं।	,,

इन महाशयों में से मुझे छोड़ और सभी ने हिन्दी एवं सभा की अच्छी सेवा की है और कतिपय तो हिन्दी के बड़े ही प्रसिद्ध विद्वान्, लेखक और सहायक हो गए एवं आज दिन वर्तमान हैं।

(५) यों तो जब से यह सभा स्थापित हुई है इसने प्रायः उसी दिन से हिन्दी की सभी प्रकार परम प्रशंसनीय सेवा की है और जो जो काम इसने अपने हाथ में प्रारम्भ ही से उठा लिए और जिनका विस्तृत विवरण पहिली ही वार्षिक रिपोर्ट में दिया हुआ है उनकी सूची मात्र देखने से सभा के संस्थापकों का उत्साह पूर्ण रीति से प्रगट हो जाता है पर जिन विशेष महत्त्व के कामों को सभा ने समय समय पर किया है तथा उसके विषय में जो अन्य कथनीय बातें हैं उनका संक्षेप में यहाँ कुछ वर्णन कर देना कदाचित् अनुचित अथवा अप्रसंग न समझा जाय—

(क) नागरी अक्षरों के प्रचार में सभा प्रथम वर्ष ही से प्रयत्न करती आती है। इस सम्बन्ध में उसने कायस्थ व वैश्य कान्फ्रेंसों में डेपुटेशन भेज कर उन जातियों में इनके समुचित प्रचार कराने की चेष्टा की, तथा सन् १८९८ वाले उस महाप्रयत्न में योग दिया कि जो माननीय पं० मदनमोहन मालवीय और अन्य अनेक प्रतिष्ठित एवं उत्साही महापुरुषों द्वारा हुआ था और जिसके द्वारा गवर्नमेंट को नागरी-प्रचार के लिए बृहद्

मेमोरियल एक महा डेपुटेशन द्वारा भेजा गया था, और जिसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९०० में सरकार ने इन प्रांतों की अदालतों व दफ़्तरों में नागराक्षरों का प्रचार कर ही दिया। कई अंशों में इसी सभा के उद्योग से अनेक देशी रियासतों के दफ़्तरों व अदालतों में भी उर्दू के ठौर हिन्दी भाषा और नागरी-अक्षरों का प्रचार हो गया है। सभा के स्थापित होने के चौथे साल कुछ ऐसी चर्चा थी कि शायद उर्दू के स्थान में संयुक्त प्रान्त में रोमन अक्षरों का प्रचार हो जाय पर सभा ने भी इसका विरोध किया और अपने विचार सप्रमाण प्रकाशित किए। अंत को हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट ने रोमन का प्रचार करना अस्वीकार कर दिया। इसके थोड़े दिनों पीछे जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, उर्दू के साथ साथ संयुक्त प्रांत में नागरी अक्षरों का प्रचार हो गया। हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यद्यपि हमारी न्यायशीला सरकार ने नागरी प्रचार की आज्ञा दे दी है तथापि कतिपय व्यक्तियों, जातियों, और कक्षाओं के विरोध एवं दूसरों के निरुत्साह और लापरवाई से इन अक्षरों का अभी पूरा क्या बरन थोड़ा बहुत भी वास्तविक प्रचार हमारी अदालतों व दफ़्तरों में नहीं हो पाया है। सभा इस कार्य की पूर्ति के लिए यथाशक्ति सदा से उद्योग करती आई है और उसकी ओर से कई एक लेखक कतिपय ज़िलों की कचहरियों में लोगों की दरख़ास्तें नागरी में लिखने को नियत हैं तथा इस कार्य के लिये लेखकों का उत्साह बढ़ाने को उसने पारितोषिक भी नियत किए, पर अभी कुछ भी संतोषजनक सफलता दृष्टिगोचर नहीं होती ! आशा है कि आप लोग इस कार्य के लिए सभा की समुचित सहायता करेंगे और स्वयं एवं अपने इष्ट मित्रों द्वारा भी इस महत् कार्य के साधन में तत्पर हो जायंगे। इसी सम्बन्ध में सभा ने प्रारम्भ ही से हिन्दी-हस्तलिपि परीक्षा भी स्थापित कर रक्खी है। यह परीक्षा समस्त संयुक्त प्रांत तथा ग्वालियर राज्य में होती है और सभा अनेक विद्यार्थियों को प्रतिवर्ष पारितोषिक एवं प्रशंसा-पत्र दिया करती है।

(ख) सभा के प्रबंध से ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जन्म हुआ और उसका प्रथम अधिवेशन सभा-भवन में माननीय पं० मदनमोहन मालवीय जी के सभापतित्व में अक्तूबर १९१० में बड़े समारोह के साथ हुआ। तब से सम्मेलन के दो और अधिवेशन प्रयाग एवं कलकत्ता में हो चुके हैं और आशा की जाती है कि वे प्रतिवर्ष होते रहेंगे तथा सम्मेलन के उद्योग से हिन्दी की अच्छी सेवा हो सकेगी।

(ग) हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज के लिए भी सभा ने प्रथम वर्ष से ही उत्सुकता दिखलाई है और उसी साल सभा ने भारत सरकार एवं गवर्नमेंट पश्चिमोत्तर प्रदेश (अब संयुक्त प्रांत) व पंजाब, तथा एशियाटिक सोसायटी बंगाल को इसके बारे में प्रार्थना-पत्र भेजे। तभी से सभा इस कार्य के उद्योग में निरंतर लगी ही रही जिसका परिणाम यह हुआ कि सात वर्ष के पीछे सन् १९०० से हमारी प्रांतिक गवर्नमेंट की सहायता से सभा ही द्वारा खोज का काम प्रारम्भ हो गया। इस काम से अनेक नवीन कवियों एवं ग्रंथों का पता लगा, बहुतेरे जाने हुए कवियों के अज्ञात ग्रंथ विदित हो गए, अगणित विवाद एवं शंकापूर्ण बातों का निश्चय हो गया, कई ऐतिहासिक बातों का पता चल गया, हिन्दी के कतिपय ऐसे अंग कि जिन्हें लोग निर्मूल अथवा हीन समझते थे परिपूर्ण पाए गए, हमारा बहुत से महत्त्व के विषयों पर अज्ञान दूर हुआ (यथा हिन्दी गद्य कितना प्राचीन है, खड़ी बोली की कविता कब से होती है, इत्यादि) अगणित कवियों के सन् संवत् एवं वृत्तान्तों का ठीक पता चल गया, और ऐसे ही बहुतेरे कार्य सिद्ध हुए और होते जाते हैं। नौ वर्ष तक इस काम को बा० श्यामसुन्दर दास बी० ए० ने बड़ी ही योग्यता और उत्तमता के साथ चलाया और सन् १९०९ से इस का भार मैंने ले रक्खा है। शोक का विषय है कि इस साल से गवर्नमेंट ने अपनी ४००) वार्षिक सहायता रोक दी है जिससे हम लोग बड़ी फ़िक्र में पड़े हैं क्योंकि धनाभाव से सभा अपने बाहुबल से इस कार्य को नहीं चला सकती पर उसकी परमोपयोगिता की ओर दृष्टि देने से उसके बन्द करने का साहस नहीं होता। इस साल का यश तो श्रीमान् महाराजा साहब छतरपुर ने लिया और इस कार्य के लिए ४००) की सहायता देकर श्रीमान् ने उसे बन्द हो जाने से रोक लिया, पर आशा की जाती है कि आगामि वर्ष से हमारी विद्यारसिक गवर्नमेंट अपनी सहायता फिर से जारी कर देगी क्योंकि श्रीमान् छोटे लाट साहब ने हाल ही में सभा के अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में जो कुछ श्रीमुख से भाषण किया है वह अवश्य आशाजनक है। खोज की छः वार्षिक और एक त्रिवार्षिक रिपोर्टें प्रकाशित हो चुकी हैं और दूसरी त्रिवार्षिक

रिपोर्ट (१९०९-११) के छपने का प्रबंध हो रहा है। इन रिपोर्टों की विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की है।

(घ) सभा आज कल तीन सामयिक पुस्तकें प्रकाशित करती है। (१) नागरी-प्रचारिणी पत्रिका तीसरे साल से ही निकलती है और इस में बड़े गम्भीर और उत्तम लेख समय समय पर निकले हैं। पहले यह त्रैमासिक थी पर १९०८-०९ से मासिक कर दी गई है। (२) नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला १९०१ से निकल रही है और इसमें विशेषतया खोज द्वारा प्राप्त उत्तम ग्रंथ ही छापे जाते हैं। यह त्रैमासिक पत्रिका है। (३) सन् १९१०—११ से एक और त्रैमासिक पत्रिका "नागरीप्रचारिणी लेखमाला" के नाम से भी निकली जाती है। सभा अपना वार्षिक विवरण भी प्रकाशित करती है। सभा के अधिवेशनों में व्याख्यान दिए जाते हैं और "सुबोध व्याख्यान" के नाम से सर्व-साधारण के लिए वैज्ञानिक एवं अन्य उपयोगी विषयों पर यथा समय और भी व्याख्यान होते हैं जिन में अकसर मैजिक लालटेन इत्यादि द्वारा लोगों का मनोरंजन तथा उनकी ज्ञानवृद्धि करने का प्रयत्न किया जाता है। हिन्दी एवं सभा के विशेष सहायकों और उन्नायकों के चित्र सभा-भवन में लटकाए जाते हैं। दो बार अच्छे हिन्दी-लेखकों की सूचियां भी तैयार कराई जा चुकी हैं। नवें वार्षिक विवरण के पृष्ठ २२ व २३ पर हिन्दी के अनेक उत्तम ग्रंथों के नामादि दिए गए हैं तथा प्रायः हर साल रिपोर्ट में उस वर्ष में प्रकाशित उत्तम ग्रंथों की सूची दे दी जाती है और हिन्दी की दशा पर संक्षिप्त नोट प्रकाशित किया जाता है।

(ङ) सभा ने प्रारम्भ से ही एक पुस्तकालय खोल रक्खा है जिस में आज दिन प्रायः ६६०० पुस्तकें हिन्दी की तथा कोई ४५० अँगरेज़ी की वर्तमान हैं। इसमें अनुमान एक सौ सामयिक पत्र पत्रिकाएँ भी आया करती हैं। यह पुस्तकालय सर्वसाधारण के लिए भी देर तक सदा खुला रहता है पर इसके मेम्बर अपने मकानों पर नियमानुसार पोथियाँ मँगा सकते हैं।

कोई २५ हज़ार रुपये की लागत से सभा ने अपना भवन भी बनवा लिया है इसी के कारण उस पर ऋण हो गया था पर अब वह शीघ्र ही चुक जायगा। सभा की ७-८ शाखा-सभाएँ भी हैं पर आशा की जाती है कि वे अपने कर्त्तव्य में शिथिलता न रख कर कार्य्यपटुता दिखलाने का प्रयत्न करेंगी।

(च) समय समय पर सभा लेखकों का उत्साह बढ़ाने और उत्तम ग्रन्थ तैयार कराने के विचार से अनेक पारितोषिक, मेडल, इत्यादि देती रहती है, जैसे हिन्दी-लेखों पर मेडल, हिन्दी ग्रन्थोत्तेजक पारितोषिक, डा० छन्नूलाल मेमोरियल मेडल, ललिता पारितोषिक, कालिदास रजत मेडल, रैडिची मेडल, राधाकृष्णदास मेडल, हिन्दी-व्याकरण के लिए ५००) पारितोषिक, इत्यादि इत्यादि। इस भांति सभा ने अपने उद्योग से अनेक उत्तम लेख और ग्रन्थ लिखाए हैं और निरंतर इस ओर सभा का ध्यान रहता है।

जिस ग्रन्थ के बनवाने का ध्यान सभा को सब से पहले हुआ था वह हिन्दीसाहित्य का इतिहास है। (उसके प्रथम वर्ष की रिपोर्ट पृष्ठ ८-१० देखिए।) यह हमारे सौभाग्य की बात है कि सभा ने इतने महत्त्व का काम हमें सौंपा और हम (मिश्र-बंधुवों अर्थात् पं० गणेशविहारी मिश्र, मैं, और शुकदेवविहारी मिश्र) ने इस काम को पूरा कर दिया। सभा की आज्ञा प्राप्त करके इस ग्रन्थ को जिस में प्रायः १८०० पृष्ठ होंगे प्रयाग की हिन्दी-ग्रन्थप्रसारक मंडली इंडियन प्रेस में छपा रही है। शायद इसी साल के अंत तक यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सकेगा।

(छ) जब से सभा स्थापित हुई है बराबर वह हिन्दी में उत्तमोत्तम ग्रन्थों को तैयार कराती और प्रकाशित करती रही है। इनमें से कतिपय नामी ग्रंथों में से यह है—

१—तुलसीदास का रामचरितमानस अर्थात् प्रसिद्ध रामायण। इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण अनेकों प्रेसों में भारतवर्ष के सभी हिन्दी-भाषी प्रान्तों के प्रायः सभी नामी स्थानों में प्रकाशित हुए हैं पर जहाँ तक हमारे देखने में आया है ऐसा शुद्ध और सर्वांगपूर्ण संस्करण कहीं भी नहीं निकला।

२—चन्दबरदाई के प्रसिद्ध रासो का इतने दिनों तक न छपना हिन्दी के लिए लज्जा का विषय था। इस बड़े अभाव को दूर करके सभा ने बड़े महत्त्व का काम कर डाला

है । प्रायः यह पूर्ण ग्रन्थ अब छप चुका है और शेषांश के कुछ ही महीनों में निकल जाने की आशा है ।

३—हिन्दी-वैज्ञानिक-कोश (the Hindi scientific glossary) के छपने से वैज्ञानिक ग्रन्थों के लिखने एवं अँगरेज़ी से अनुवाद करने में लेखकों को बड़ा सुभीता होने लगा है और सदा होगा । वैज्ञानिक विशेष शब्दों के लिए हिन्दी में समुचित शब्द मिलते ही न थे और बड़ी गड़बड़ी एवं अड़चन पड़ा करती थी । यह सब कठिनाइयां अब दूर हो गईं । सभा ने बड़े परिश्रम और विचार के साथ यह कोश तैयार किया है ।

४—वनिताविनोद अर्थात् स्त्रियों के पढ़ने योग्य एक उत्तम ग्रन्थ जिस में कई बड़े ही विशद निबंध हैं । इसका बँगला और शायद मराठी या गुजराती में भी अनुवाद हुआ है ।

५—अनेक पाठ्य पुस्तकें अर्थात् पाठशालाओं में पढ़ाई जाने लायक़ किताबें जिन का प्रचार भी हुआ ।

६—हिन्दीसाहित्य का इतिहास जिस का ब्योरा ऊपर दिया जा चुका है ।

७—संक्षेप लेख-प्रणाली अर्थात् हिन्दी-त्वरित-लेखन (Hindi short-hand) जो छप कर तैयार हो गई है । इसके परिपक्व हो जाने पर एक भारी अभाव की पूर्ति हो जायगी ।

८—अनेक नामी और उत्तम ग्रन्थ जिनका सम्पादन और प्रकाशन ग्रन्थ-माला द्वारा हुआ है ।

९—सब से बढ़ कर काम जो सभा अब कर रही है वह "हिन्दी-शब्द-सागर" अर्थात् हिन्दी-भाषा का विस्तृत कोश है । इसके बनाने का भी ध्यान सभा को पहिले ही वर्ष हुआ था और उसने श्रीमान् महाराजा साहब दर्भंगा की सहायता इस कार्य्य के लिए तभी मांगी थी । अभी इसके बनने में ५०,०००) के व्यय का बजेट हुआ है । इसका पूरा ब्योरा सभा की रिपोर्ट में मिलेगा पर इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यह बड़े ही महत्त्व का काम है और इसके तैयार हो जाने से हिन्दी की एक भारी त्रुटि दूर हो जायगी । सभा ने इसके लिए २०००) का पारितोषिक इसके सुयोग्य सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दासजी को देना चाहा और उसके न लेने पर १००) मासिक का पुरस्कार स्वीकार करने को उनसे कहा पर उन्होंने दोनों ही बातें अस्वीकार कर यह महत् कार्य्य बिना कुछ लिए ही करने का दृढ़ संकल्प कर लिया है । काम भली भांति चल रहा है और आशा है कि वह शीघ्र पूर्ण हो जायगा ।

निदान सभा से जहां तक हो सकता है वह तन, मन, धन से हिन्दी की सेवा कर रही है । आशा है कि आप महाशय गण उसका दिनों दिन उत्साह बढ़ाते ही जाइएगा । अब मैं आप लोगों का बहुत सा अमूल्य समय नष्ट कर चुका हूँ और विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । आप लोगों से क्षमा मांगता हुआ अब मैं इस व्याख्यान को यहीं समाप्त करता हूँ ।

श्यामविहारी मिश्र

सभापति, काशी-नागरीप्रचारिणी सभा ।

—:o:—

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा के गत २० वर्षों के आयव्यय का लेखा ।

[जुलाई १८९३ से जून १९१३ तक]

आय का ब्योरा		धन की संख्या		
		रुपया	आना	पाई
सभासदों का चन्दा	...	२४६२२	१४	३
विशेष चन्दा	...	३०६२	...	...
पुस्तकों की बिक्री	...	१२५८०	१५	८
ब्याज	...	७७	१३	१०
फुटकर आय	...	२४१२	८	२
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	...	४२६०	...	...
गवर्नमेंट की सहायता	...	८१२०	८	...
स्थायी कोश	...	२८३१६	१२	४
पुस्तकालय	...	६७०४	१३	६
पृथ्वीराजरासो	...	७०६८	७	७
सम्मेलन	...	१४३१	४	६
नागरीप्रचार	...	९४६	३	७½
पारितोषिक	...	३६०	...	...
अमानत	...	११२७	११	३
राधाकृष्णदास-स्मारक	...	२१७	४	...
हिन्दी-कोश	...	२५१८६	१४	११
उधार	...	१७४००	...	...
		१४४४९६	३	७½

व्यय का व्योरा		धन की संख्या		
		रुपया	आना	पाई
छपाई	...	२०८१७	८	३
कार्य्य-कर्त्ताओं का वेतन	...	६२४६	१५	१०
डाकव्यय	...	४६३७	...	६
फुटकर व्यय	...	५६४७	१२	६
पारितोषिक	...	१०२७	११	...
नागरीप्रचार	...	३१४६	७	३
मकान का किराया	...	५६६	...	...
साहित्य-सम्मेलन	...	१५२३	१	११½
पुस्तकालय	...	७०८४	११	५
पुस्तकों के लिये पुरस्कार	...	२८५५	२	..
पृथ्वीराजरासो	...	६६०४	...	६
हिन्दी-पुस्तकों की खोज	...	७२०१	१४	३
स्थायी कोश	...	३२४६१	६	५
ब्याज	...	१२३	३	३
हिन्दी-कोश	...	१८१३८	१३	६½
मरम्मत	...	७८	१३	१०½
उधार	...	१४२०५	...	...
अमानत	...	१२४३	५	...
राधाकृष्णदास-स्मारक	...	१३१	...	...
		१३७०७३	१	११½
	बचत...	७४२३	१	८
		१४४४९६	३	७½

—:o:—

नाम उन महाशयों के जिन्होंने गत २० वर्षों में सभा की सहायता ५००) वा उससे अधिक से की।

	रुपया	आना
संयुक्तप्रदेश की गवर्नमेंट	१४१२०	८
स्वर्गवासी श्रीमान् राजर्षि भिनगा-नरेश	४७५०	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर रीवाँ	४१४६	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर छत्रपुर	३३३०	...
भारत गवर्नमेंट	३०००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर बीकानेर	२५००	...
एक सहायक (राजकोट निवासी)	२२५०	...
राय शिवप्रसाद	२०००	...
राजा कमलानन्दसिंह	२०००	...
श्रीमान् महाराजाधिराज बर्दवान	२०००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर बनारस	२०००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर भावनगर	१५००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर अलवर	१५००	...
आनरेब्ल डाक्टर सुन्दरलाल सी० आई० ई०	१५००	...
श्रीमान् ग्वालियर-नरेश	१०००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर काश्मीर	१०००	...
श्रीमान् गायकवाड़ बहादुर बड़ोदा	१०००	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर अयोध्या	१०००	...
आनरेब्ल बाबू मोतीचन्द	८५०	...
राजा माधवलाल सी० एस० आई	५१५	...
श्रीमान् महाराजा साहब बहादुर इन्दौर	५००	...
राय राधारमण	५००	...
राजा बलवंतसिंह	५००	...

—:o:—

सभा का कार्य-विवरण

प्रबन्धकारिणी-समिति

(१) गत अधिवेशन (ता० २८ जून १९१३) का कार्य-विवरण पढ़ा गया और स्वीकृत हुआ।

(२) मंत्री ने १ जुलाई १९१३ से ३० जून १९१३ तक के आय-व्यय का हिसाब उपस्थित किया। निश्चय हुआ कि सन् १९१२—१३ के व्यय के लिये जो बजट स्वीकृत है उसमें निम्नलिखित संशोधन स्वीकार किया जाय—